UNIVERSAL LIBRARY
OU_182909
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H 80·8 S62P Accession No. H3837

Author सियारामशरणप्रसाद 'संपा.'

Title प्रतिनिधि साहित्य 1962

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रतिनिधि साहित्य

[१९६२ की प्रतिनिधि रचनाएं]

प्रधान सम्पादक

सियाराम शरण प्रसाद

सम्पादक

अनुराधा सिन्हा

कला भारती :: मुजफ्फरपुर

(बिहार)

प्रकाशक · कलाभारती, सराय सैयद अली
मुजफ्फरपुर (बिहार)

आवरण : मोहन लाल विद्यालंकार

व्यवस्थापक : संगदिल

मुख्य वितरक : प्रगति प्रकाशन, ३५८ मंडी सईदखां
आगरा (उ० प्र०)

अन्य प्राप्ति स्थान : प्रगतिशील प्रकाशन
१५१४, कूचासेठ, दरीबा, दिल्ली-६

ज्ञान मंदिर, पाटनकर बाजार लश्कर
ग्वालियर (म० प्र०)

मालवीय प्रकाशन, नया गाँव
नजीर बाग, लखनऊ (उ० प्र०)

केदार स्मृति भवन, १६-२. ए० बैकुंठ घोष रोड कलकत्ता-
४२ अशोक प्रकाशन, महेन्द्रू, पटना-६

मूल्य : २ ५० न० पै०

मुद्रक : पशुपति प्रेस, मुजफ्फरपुर

समर्पित सादर

राहुल साकृत्यायन, शिव पूजन सहाय, डॉ० रांगेय राघव,
डॉ० रघुवीर, बाबू गुलाब राय, गोपाल सिंह नेपाली,
सियाराम शरण गुप्त और देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

को

जिन्होंने हिन्दी को शक्ति दी, दिशा दी, प्रतिष्ठा दी—

—सियारामशरण प्रसाद

कः पन्था ?

प्रतिनिधि साहित्य : ३, १९६२ की प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन, आपके हाथ में हैं। आपने तीन वर्षों मे हिन्दी की, सूक्ष्मतर विकास-बोध से अनुस्यूत रचनाओं को देखा है और भले ही उनकी समग्रात्मकता को आत्मसात किया हो, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से सकलन की आवश्यकता तो आपने भी अनुभव की होगी। हमने इसी काल-खंड के अविच्छिन्न प्रवाह को कालविशेष के दर्पण को आपके समक्ष रखने की चेष्टा की है। यह अनिवार्यतः हिन्दी के ऐतिहासिक स्वरूप प्रस्तुत कर निर्मित आयतन तथा विगत वृत्तियों की संश्लिष्ट प्रक्रिया की दिशा और उसके परिणाम से हमें आधुनिकतम विकास के साथ दायित्व को समझने और सोचने में प्रेरित कर हिन्दी के सम्पूर्ण महत्वपूर्ण आयाम से सम्पर्कित कर सके। यह भी सत्य है कि यह दायित्व और घोषणा जिस अनुपात में महत्वपूर्ण है उसी सीमा तक दायित्वों की प्रखर धारवाली कसौटी भी है। इस व्यावहारिक सीमा का अनुमाप 'प्रतिनिधि साहित्य' में सुनिश्चित स्वरूप के साथ हो रहा है या नहीं इसे तो विद्वज्जन समझें, परन्तु इसके साथ संलग्न दायित्व बोध की सजगता का ध्यान सम्पादन काल में अवश्य रखा गया है; यही कारण है कई लोकप्रिय, बहुप्रसिद्धि प्राप्त रचनाकारों की, निर्धारित काल विशिष्ट में प्रकाशित, पठित, प्रसारित रचनाएं प्रतिनिधि साहित्य में नहीं ली जासकी, परन्तु अनेक सर्वथा नवोदित रचनाकारों की रचनाएं स्थान पा गईं क्योंकि निरपेक्षता का पालन पूर्ण तटस्थता से किया जाना औचित्य पूर्ण दृष्टिकोण के अनकुल था और रचनाकारों को नहीं रचनाओं को आधार माना गया है।

'प्रतिनिधि साहित्य' की प्रत्येक रचना के सकलन की आधार-मूलक कसौटी पर विचार-विन्दु डालने के पश्चात मैं पुनः 'प्रतिनिधि' की अधिकार सम्बन्धी मान्यताओं का दुहरा देना चाहता हूँ जिसें प्रतिनिधि साहित्य : १ (१९६०) में मैने व्यक्त किया था—" जो युग के समग्र मूल्यों और दायित्व को अधिक सजगता से विकासशील स्थिति में ग्रहण कर लेती है 'प्रतिनिधि' के नियमों की अनिवार्य पूर्ति करती है। जिस रचना में उसके अस्तित्व और उसकी सार्थकता का सहज प्रमाण एक मौलिक अनिवार्यता के रूप में मिलता है और फलस्वरूप जिसकी रचना-प्रक्रिया पूरी रचना से

अविभाज्य तथा जिसका कथ्य भी सुसगत शिल्प से अभिन्न प्रतीत होता है, उसी रचना के समग्रात्मक स्वभाव और प्रभाव को उसकी मौलिक अनिवार्यता का सहज प्रमाण मानकर उसे प्रतिनिधित्व का अधिकारी समझा गया है, और इस संकलन में सम्मिलित किया गया है।''

इसके साथ ही 'नवगीत का अर्थ नवीन शिल्प और भावबोध को ग्रहण करने वाले गीत की आधुनिक विकास दशा की रचनाओं से है जो आधुनिकता की समग्रता को समाविष्ट कर भारतीय विकास के साथ प्रस्तुत हो रही हैं और यही तथ्य 'नवकथा' के विषय में स्वीकार करता हूँ (जिस पर 'अमिता' मासिकी लखनऊ में' 'नई और अच्छी कहानी' पर परिचर्या के क्रम में भी स्पष्टतया लिख चुका हूं)। मैं नहीं समझता इतनी स्पष्टता के पश्चात भी अहममूलक या हीनतर भ्रान्ति का कोई सर्वेक्षक शिकार होगा। संग्रहीत रचनाएं इस नई दिशा की संभावनाओं को प्रस्तुत कर एक नूतन परिप्रेक्ष्य में चिन्तन की क्रिया को उद्वेलित करती हैं इनमें नए शिल्प की सूक्ष्मतर सज्जागत समृद्धि देखी जासकती है। इसी प्रकार नवगीत का परिनिष्ठित रूप इन रचनाओं द्वारा समझा जा सकेगा। आज नयी कविता में कुहरे का घनत्व निरन्तर वृद्धि पर है और बाह्य आकृति का भ्रमजाल फैलाकर पाठकों को निरुत्साहित करने की प्रवृत्ति क्रियाशील है। इस प्रतिष्ठापन के अन्दर कई प्रेरक शक्तियां (चाहे वे ह्रासमूलक ही हों) संयुक्त हैं, परन्तु 'प्रतिनिधि साहित्य' में इस विभ्रम से अलग नयी कविता की कला और कथ्य आदि सम्पूर्ण एकत्व में देखा गया है। सम्पूर्ण एक वर्ष का मथन कर निकाला गया सार है और इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा, छपित तथाकथित नयी कविताओं की निरर्थकता पर अलग से कुछ कहना शायद अब आवश्यक नहीं।

एक प्रश्न अवश्य ही सतही दृष्टि से उठायी जा सकती है। आज साम्यवादी चीनी आक्रमण की प्रतिक्रिया से राष्ट्रीय कविताएं बडी संख्या में लिखी और छापी जारही हैं। अनेकानेक संकलन भी निकलरहे हैं। परन्तु इनसे प्रबुद्ध चेतना और समदृष्टि का असन्तोष ही होता है कि क्या काव्य के लिए गाम्भीर्य (Seriousness) का सुयोग्य नष्ट हो गया। बाढ़ में विषम मात्रा में आनेवाले जल-प्लावन में भी स्थायी धारा 'सरस्वती' की तरह अन्तर्हित रहती है। आज नीर क्षीर विवेक की आवश्यकता और तटस्थता अधिक अपेक्षित है। यह नहीं कहा जा सकता कि यह अरोपित स्थिति है। परिवेश से मुक्त मनुष्य कब हो सका है? परन्तु उसमें जो

गरिमा, विचार सवेग अनुभूति और काव्यगत संवेदनशील झंकार की निसृति आवश्यक है इसे हम नजर अंदाज नही कर सकते और यह आज की राष्ट्रीय रचानाओं (?) में नही उतरा है। ऐसी स्थिति में ही प्रतिनिधि साहित्य का प्रकाशन हुआ है और इस कसौटा के सामयिक घुटन में इस गहरी आस्था और ईमानदारी द्वारा ही कुछेक रचनाओं को इस परिपेक्ष्य की, सचेतन शील दृष्टि म प्रतिनिधि साहित्य में स्थान दिया गया है।

इन्हीं एतिहासिक मूल्य मे नव कथा और एकाकी को परखना हमारा ध्ये रहा है।

उपर्युक्त दृष्टिकोण से ही प्रतिनिधि साहित्य का आरम्भ हुआ है। और आज प्र० सा० : ३ आपके हाथमें है। इस संकलन में डॉ० विद्यानाथ मिश्र, योगेन्द्र रीगावाल, कृष्ण मोहन मधुकर, नृपेन्द्र नाथ गुप्त और हरिहर जी का बहुत सहयोग रहा है।

सराय सैयद अली

मुजफ्फरपुर

सियाराम शरण प्रसाद

दीपावली, १९६३

आरसी प्रसाद सिंह
डॉ० रामदरश मिश्र,
बाल स्वरूप 'राही'
ब्रजकिशोर 'नारायण'
रामगोपाल 'परदेसी'
डॉ० रवीन्द्र भ्रमर
जुगमंदिर तायल
डॉ० श्यामनन्दन 'किशोर'
अजित पुष्कल
डॉ० राम कुमार वर्मा
केदार नाथ मिश्र प्रभात

नव गीत

हरीश भादानी
रामनारायण सिंह 'मधुर'
महेन्द्र नारायण 'मस्ताना'
शलभ
अमरेन्द्र कुमार पुनीत
राम चन्द्र चन्द्रभूषण
शैवाल सत्यार्थी
नीरज
पुरुषोत्तम खरे
विष्णु कुमार त्रिपाठी 'राकेश'
पी० आदेश्वर राव
राजेन्द्र प्रसाद सिंह
रामरिख मनहर
वीरेन्द्र मिश्र
लक्ष्मी नारायण 'मुकुर'

हमारी कल्पना ही शून्य को आकार देती है ।
हमारी चेतना ही विश्व को आधार देती है ॥
जिसे हम सत्य कहते हैं, जिसे सच मान बैठे है ।
जिसे निज अन्तरात्मा में सभी पहचान बैठे है ॥
वही है शक्ति, जो ससार को संसार देती हैं ।
हमारी कल्पना ही शून्य को आकार देती हैं ॥
सुरभि मृगनाभि में होती मगर मृग ढूढता वन में ।
छिपा है वह हमारा भी हमारे ही अतल मन में ॥
उसी की ज्योति जीवन को अमर आह्वान देती है ।
हमारी कल्पना ही शून्य को आकार देती है ॥
विलक्षण तत्त्व वह कोई, विचारों में नही आता ।
जहाँ असमर्थ वाणी है, जहाँ है मौन विज्ञाता ॥
वहीं है रागिनी, जो तार को झंकार देती है ।
हमारी कल्पना ही शून्य को आकार देती है ॥
पुरुष है एक ही कोई, निखिल ब्रह्माण्ड में व्यापक ।
उसी की विश्व रचनी है, वही हैं सृष्टि-सहारक ॥
उसी की नृत्य-लीला ही धरा को प्यार देती हैं ।
हमारी कल्पना ही शून्य को आकार देती है ॥
गया जब द्वैत, तब हैं कौन प्रियतम ? प्रेयसी कैसी ?
विशुद्धानन्द में लगती, न जाने उर्वशी कैसी ?
अकेली एक सत्ता ही गगन-विस्तार देती है ।
हमारी कल्पना ही शून्य को आकार देती है ॥
रहा क्या शेष ? टूटा जो कलश' आकाश ही तो है ।
अगर है विम्ब, तो प्रतिबिम्ब का आभास भी तो है ॥
कहाँ है ज्योति, पारावार को जो ज्वार देती ?
हमारी कल्पना ही शून्य को आकार देती है ?

**

एक नीम मंजरी । डा० रामदरश मिश्र

एक नीम-मजरी
मेरे आगन झरी
काँप रहे लोहे के द्वार
आज गगन मेरे घर झुक गया
भटका-सा मेघ कहाँ रुक गया
रग-रग में थरथरी
सन्नाटा आज री
रहा मुझे नाम से पुकार
एक बूँद में समुद्र अँट गया
एक निमिष में समय सिमट गया
वायु-वायु बावरी
किसकी है भाँवरी
सास-सास बन रही फुहार

**

आत्मार्पित व्यक्तित्व । बालस्वरूप 'राही'

मैं अगर गाता हुआ गुजरा तुम्हारे द्वार से,
यह न समझो, मै भिखारी हूँ सुयश के दान का
याचना बन कर न सब के ओठ पर आती व्यथा,
भीख पाने के लिये ही तो सभी गाते नही;
मौन रह कर दर्द अपना सह सका होता अगर,
हाथ मेरे पास वीणा के कभी जाते नही।
कह रहा सच, मैं न गातों की कभी लेता शरण,
और कोई पा सका होता अगर पथ त्राण का।
मैं प्रतिध्वनि बन तुम्हारे शब्द की गूँजा अगर;
अर्थ क्या इसका यही मैं घाटियों-सा रिक्त हूँ ?
और हैं यह बात जीना ही नही भाया मुझे,
अन्यथा मैं सब दुखों के वश से सम्पृक्त हूँ।
रुक गया हूं क्योंकि तुमने प्यार से आवाज दी,
पर न मैं सौदा करूँगा प्रीति से अभिमान का।
मैं अहम् से मोल आदर का चुका सकता नही,
देख ली मैंने सभी अभिनन्दनों की व्यर्थता,
मान या अपमान मेरा क्या करेंगे वे भला ?
शक्ति जिनकी द्वेष, जिनकी भक्ति है, असमर्थता।
पूर्व इस के हाथ फैलायें किसी के सामने
घोटा दूँगा कंठ मैं हर दुध मुँहे अरमान का।

**

पावस । व्रजकिशोर 'नारायण'

बदलियाँ गरज कर गाने लगी हैं
बुदनियाँ झाँझ झनकाने लगी हैं
विजलियाँ नयन से जाने लगीं तो
हवाएँ प्राण तक आने लगी हैं !!!
तरनियाँ वक्ष से तट के, लगी हैं
तरुनियाँ घाट पर ठिठकी-ठगी हैं
घटाये सात रगी मे रँगी तो
छटायें लाख रगो में रगी हैं !!!

**

कहें क्या आप बीती हम । रामगोपाल 'परदेसी'

सुखन के दिन न आपाये,
दुखन के दिन चले आये ?
लिये विश्वास बैठे थे, लिये अभिलाष बैठे थे,
किसी से आज मिलने की—लगाये आस बैठे थे,
हुआ क्या ये घड़ी भर में
कफ़न देखो लगा कर में
मिलन के दिन न आपाये—
मरण के दिन चले आये ?
हमारे गान प्यासे हैं, हृदय अरमान प्यासे हैं,
किसी के रूप दर्शन को—नयन नादान प्यासे हैं,
कहें क्या आप बीती हम
जनम से है नजर पुरनम
खिलन के दिन न आपाये—
मिटन के दिन चले आये ?
नहीं है फाग जीवन में, भगी है आग जीवन में,
सभी उजडे पड़े हैं जो लगाये बाग जीवन में,
उमर चौबीस की केवल
लगी चिन्ता हमें प्रतिपल
उठन के दिन न आपाये—
झुकन के दिन चले आये ?

**

गीत । डा० रवीन्द्र भ्रमर

टूटे ना
कोई तार,
धीरे-धीरे स्वर उठाओ !
प्रीत बंसरी अमोल
पोर-पोर रिसे बोल,
छूटे ना
कोई छन्द,
गीत हौले-हौले गाओ !!
राग रंग रंगे गात
नैन ओट सारी बात,
फूटे ना
कोई भेद,
प्यार पलकों में छिपाओ !!
नाव न तो कूल गहे
औ न बीच धार बहे,
रूठे ना
कोई लहर,
पाल आधे से झुकाओ !!
टूटे ना
कोई तार,
धीरे-धीरे स्वर उठाओ !

**

वन-वन में दहका । कुमारेन्द्र पारस

वन के आँगन में कैसी आग लगी ?
जिजीविषा है जीवन की यह, आज जगी
लहराती डालों में जीवन का लास रे !
दहका पलाश रे !!
मस्ती नस-नस में कैसी यह आज घुली ?
ठण्डा है पवन, चमकती है धूप खुली ।
नदियों की लहरों का दर्पण भी पास रे !
दहका पलाश रे !!
सूने जंगल में क्यों जलती मशाल है ?
मृत्यु की छाया पर जीवन यह लाल है ।
मुरझाये धौंकों में जीवन की प्यास रे !
दहका पलाश रे !!

**

गीत सागर से । डा० श्याम नन्दन 'किशोर'

जलधर के नीरव प्राण नहीं रहने को !
रिमझिम या गर्जन में कुछ हैं कहने को !
जिस में कुछ अनुभव, चीखेगा, बोलेगा ।
चेतन, तूफाँ में मस्ती से डोलेगा ।
चट्टानों में गूँजे, फूटें निर्झर में,
गिरिवर के नीरव गान नहीं रहने को !

पूजा कैसी, जिसमें अनुराग नहीं हो !
वह चाँद भला क्या, जिसमें दाग नहीं हो !
छवि हो चचल साकार कि नाद अनाहत,
साधक के नीरव ध्यान [redacted] नहीं रहने को !
जो निःस्व बना वह क्या जीवन जीतेगा ?
हो प्यास न जिसको, क्या सागर रीतेगा ?
सपनों में चमके या दमके रण-थल में
वीरों के नीरव ध्यान नहीं रहने को ।

आशा-अभिलाषा जितनी पूरी होगी
कविता न मरी उतनी दूरी होगी,
यों छन्द-शब्द हों चाहे सीमित जितने,
कवि के नीरव अरमान नहीं रहने को ।
जलधर के नीरव प्राण नहीं रहने को ।

**

गीत । अजित पुष्कल

गगन बीच हेमरग घोल गयी,
विगत रात साँवली,
अटक गयी, आँखें उतावली ।
रंग तितर पखी मेघ आकाश के,
रंगी धरणि, फूल, पात बाँस के
रंगी कूप बावली ।
झुके नील कुंद सुमन हुए वृन्द,
कमलों पर उड़े प्रमद भ्रमर वृन्द,
भ्रमरी अल सौ हलो ।
डालों पर तिनकों के नीड़ जड़े,
वनों मे चन्द्र पखी मोर उड़े,
उड़े काग काकली ।
अटक गई, आँखें उतावली ।

**

यह कंटीली भूमि, कैसे यहाँ निकला फूल !

किस लता की साधना का स्वप्न धुल कर
कटको के इस अँधेरे में खिला है.
कष्ट से हतप्रभ बने सूने नयन को
वेदना का अश्रु जैसे अब मिला है।

किस मलय की लहर का लालित्य था वह
किस दिशा से खिचा स्वय यह बाज खीचा,
और कटुता से भरे नीरस विजन में
मधुरता का विन्दु पहली बार सींचा !

सत्य क समक्ष हो है विभ्रमित यह भूल,
यह कटीली भूमि, कैसे यहाँ निकला फूल

लहर हिचकी ले उठी जब चोट खाई
यह न समझी, कौन सी वह ककडी थी,
पत्थरों के बीच सिहरी, नाचती-सी
यह न सोचा–शिला छोटी या बडी थी।

नील नभ का बिम्ब ले प्रत्येक कण में
बुद्बुदों की राशि दुलराती चली थी,
किस दिशा से कौन बल उसको मिला था
जो कि बल के साथ बलखाती चली थी

थी उसे चिन्ता न, किस दिन मिल सकेगा कूल,
यह कटीली भूमि कैसे यहाँ निकला फूल !

और मै हूँ भाग्य की किस प्रेरणा से
खिल उठा हूँ संकटों के इस विपिन म
डूब कर शशि की सुधा की धार में कल।
आज निकला सूर्य से अभिषिक्त दिन में।

पत्थरों की सधि में वह ओस कण था
जो कि जीवन का महासागर छिपाए,
एक गहराई मुझे देकर सृजन का
स्वयं सूखा अकुरित जीवन जगाए।

इस सृजन के पर्व में जीवित बनी है धूल,
यह कंटीली भूमि, कैसे यहाँ निकला फूल !

**

गीत । केदारनाथ मिश्र प्रभात

जीवन की डाली-डाली
शेफाली का त्योहार

पावन परस झकोर अमिय का
तार-तार झंकृत-सा हिय का

सम्भल न पाता नीराजन की
वेला का शृंगार

मन का गोपन स्वयं न बोले
जब तक तन न समर्पित होले

वदन का मृदु छद दीप, लौ
कम्पित-सा अभिसार

रंग दे गात रात यह कैसी
मधु मे सिक्त बात वह कैसी

सिहरन की सौगन्ध सौम हीं
बनती उपसहार

**

गीत । हरीश भादानी

मै भी तुझे पुकार दूँ तू भी मुझे पुकार दे
सगम की सीमाओं पर सूनेपन का कोलाहल है
छू पाई दूरी के पथ सपनो की सरगम घायल है

गर न थकी दो सासें तो साधों की खोजो नाव को
मै भी इधर उतार दूँ, तू भी उधर उतार दे।
अरमानों पर पहरा है जीवन की जडताओं का
जग सुनने का आदी है आधी रही कथाओं का

गर निष्ठायें शेष हो तो "कमजोर इरादो पर
मै भी शब्द उभार दूँ तू भी शब्द उभार दे।
वैसे तो हम दोनों के पथ का एक विराम है,
लेकिन हर एक चौराहा भरमाते में बदनाम है

फहरे परचम राग का तो मजिल के उस छोर पर
मै भी सीध उभार दूँ, तू भी सीध उभार दे।

**

आज सरस बरसात । राम नारायण सिंह 'मधुर'

रिमझिम रिमझिम बूँदों वाली, आज सरस बरसात री !
पुलक उठी धरती की छाती,
मिली पिया का जैसे पाती ।
हरी भरी तरुवर की डाली, धुले-धुले सब पात सखी री !
आज सरस बरसात सखी री !
प्रियतम के पथ पलक बिछाता,
चली कहाँ सरिता मदमाती ?
लहराता भावों का सागर, मन में मन की बात सखी री !
आज सरस बरसात सखी री !
हुई पूर्ण सब की अभिलाषा,
पर मेरा चातक मन प्यासा ।
चमक रही है चपल चचला सिहर रहा तन गात सखी री ।
आज सरस बरसात सखी री !

**

गीत । महेन्द्र नारायण 'मस्ताना'

पल-पल ढलती रात सुहानी
जीवन के इस अल्हड़पन में मुझको तू नादान न समझो ।
नील गगन के चाँद-सितारे
छुप-छुप कर वे करें इशारे
देख विरह की मेरी ज्वाला, मुझको तू दिनमान न समझो ।
कैसे भूलूँ उन रातों को
उलटी-सीधी उन बातों को
मेरी हालत देख सुभद्रे ! मुझको तू अनजान न समझो ।
यह तो है बेदर्द जमाना
यहाँ व्यर्थ दुख-दर्द सुनाना
किसका कौन सुना करता है, पर इसको अपमान न समझो ।
तू मेरे जीवन - उजियारे
रो - रो मेरी प्रीत पुकारे
चलाचली की इस बेला में, मुझको तू भगवान न समझो ।

**

बादल की सीढ़ी पर । शम्भु

खुली खुली धुली धुली व्योम की अटारी पर,
बादल की सीढ़ी से चढ़ता है चन्द्रमा ।

अपवादों के भय से अपने ही आत्मज को,
अंधियारे के घर में संध्या है छोड़ रही ।
पश्चिम के सिंदूरी मरुथल की रेती पर,
ममता की मर्यादा प्यासी दम तोड़ रही ।

दूध मुँही पलकों में श्रद्धा के आँसू भर,
जीवन का मंत्र नया पढ़ता है चन्द्रमा ।

तारों की प्याली से चाँदी का रंग गिरा,
संसृति की मटमैली चूनर पर आन पड़ा ।
श्यामा की अलकों के फूल लिये आतुर में,
फागुन के गेहूँ-सा भादों का धान खड़ा ।

रत्नों के बरण बरण फूल खिले पग-पग पर,
पथ-पथ पर चरण-चरण बढ़ता है चन्द्रमा ।

सपनों के कंचन-मृग पनघट की ओर चले,
जल भर कर लौटी हैं गीतों की किन्नरियाँ ।
झीलों के दर्पण में मुँह अपना देख रहीं,
अभिमानी बेला की आकाशी अप्सरियाँ ।

शिल्पी-सा पूनम की मूरत हिम-खण्डों पर
किरणों की छेनी से गढ़ता है चन्द्रमा ।

***

गीत । अमरेन्द्र कुमार दुलीत

बूटे ले बेल चढ़े
रेशम-से फूल कढ़े
ओट हुए चन्दा के थके थके पाँव रे ।
उतरी नव गीत-परी
रूपों के घाट भरी
डूब गई निंदियों में बरगद की छाँव रे ।
लहरों पर नाव तिरे
आँगन-घर गंध फिरे
ढूंढ़ रहे सपने भी गली-गली ठाँव रे ।
मन का कपोत उड़ा
टूटा-सा प्राण जुड़ा
नैनों में बस आया प्रीतम का गाँव रे ।

**

मन । मन घुटा रहा

अपने ही टूट गया

सुधियाँ थी यायावर इधर-उधर भटक गईं
कभी यहाँ मुरझाईं कभी वहाँ चटक गईं

जलकर चौराहे पर आगन में दीप बुझा
राहों का साथी वह बाहों में छूट गया

अपना पर्याय नही मिला, शब्दकोश गया
हलका आकर्षण भी गिना दृष्टि दोष गया

संवेदन की रीढ़ झटके से मुरक गई
घाटों का गागर जब पनघट पर फूट गया

ऐसे मुँह फेरा वैसे मन को देख लिया
चितवन जो रूठी तो चिलमन का देख लिया

गौरव की गंध गली-गली फिरी बिखर गई
अश्रुत स्वर आया, बौराया, फिर लुट गया

मन । रामचन्द्र चन्द्रभूषण

**

डगर और विश्वास । प्रवासि सत्यार्थी

चल-चल बीती उमर-डगरिया,
पर न मिला हमसफर-सँवरिया !

हर निगाह पर आँख लगाई,
हर नदिया को प्यास दिखाई,
हाथ जोड कर सबके सम्मुख
पहुँचा, लेकिन प्रीति न पाई,
छलक-छलक रीती गागरिया !
ढुलक-ढुलक मिट गई नजरिया !!
प्यासों ने ऐसा भटकाया,
रस्ता कोई नजर न आया,
जहाँ साँस रुक जाती देखी,
मैंने उसे पड़ाव बनाया;
पल-पल बाजे मौत-बंसुरिया !
जल-जल होती राख-अटरिया !!
मगर अभी विश्वास अमर है,
मुझको चलना और डगर है,
शायद फिर मिलना हो जाए,
लगन सत्य है, साध प्रखर है;
चुभने दो जो चुभे कंकरिया !
पा ही लूँगा कभी संवरिया !!

**

रुबाइयाँ । नीरज

जीवन ने कहा, बहता हुआ जल हूँ मैं;
तो आके मरण बोला, मरुस्थल हूँ मैं;
पर आँख से जब प्यार के आँसू दो गिरे,
कण-कण यह पुकार उठ्ठा कि बादल हूँ मैं।

२

हर स्वप्न है रो-रो के सुलाने के लिये,
हर याद है घुल घुल के भुलाने के लिये,
जाती हुई डोली को न आवाज लगा,
इस गाँव में सब आये हैं जाने के लिये।

३

कफन बढ़ा तो किसलिये नजर तू डबडबा गई
सिंगार क्यों सहम गया बहार क्यों लजा गई;
न जन्म कुछ, न मृत्यु कुछ, बस इतनी सिर्फ बात है
किसी की आँख खुल गई, किसी को नींद आ गई।

**

गीत । पुरुषोत्तम खरे

आह! आज फिर
अपनी बौरायी भाषा में
मुझे बुलाया
ताल पास के आम ने
रुंधे कठ से
मीत तुम्हारी अंतिम चिट्ठी
अँधियारे में
बाँची फिर-से-शाम ने।
आज रात भर
सावन रोया
सिसक·· सिसक कर!
उस खंडहर के सामने ··
तुमने चरणों पर
धर कर सिर
जहाँ कहा था:—
अगले जनम
मिलेंगे हम, फिर ·· ·
अगर
इस जनम
नहीं मिला था: राम ने!!!

**

चाँदी के देश में । विद्याकुमार त्रिपाठी 'राकेश'

सतरंगे सरगम पर रंगभरा गीत है ।
झूम रही वसुधा पर किरणों की रागिनी,
चाँद लिये गोदी में थिरक रही यामिनी;
दिग्भ्रम-सा होता है चाँदी के देश में,
फसलों का कंचनगिरि सोने के वेष में,

फागुन के पाहुन की अजब नई रीत है ।
रगभरा गीत है !!
पूरब का बनजारा नयनों को खोलता,
कलियों की वंशी में सौरभ स्वर घोलता;
आग लगी सुधि- वन में या सुमन पलाश के,
झोंके पर झोंके हैं आ रहे सुवास के,
मस्ती के मौसम का मधुरिम सगीत है ।
रनभरा गीत है !!
धरती के अधरो पर बोल नये साल के,
चलते शर कोमल से प्यार के गुलाल के,
नेह के अबीर का एक नया ढंग है,
नयनों की गागर में प्रीति की उमग है;
अनबोले भावों की आज हुई जीत है !
रगभरा गीत है !!

**

गीत । पी० व्यंकटेश्वर राव

तुम सो जाओ सजनी निशि की अँधियाली में
मैं लिखता हूँ गीत यहाँ भर मधु उर की प्याली में ।
अम्बर में कितने दीप जले
पातों पर कितने सीप ढले
अपनी झिलमिल रजत-रश्मियाँ
फैलाते खद्योत चले ।
तुम सो जाओ सजनी निशि की अँधियाली में
खिल जाते हैं फूल यहाँ मेरे मन की डाली में
मुख पर अलकें डोल रहीं
पावन छवि अमृत घोल रही
पलकों मे छायी नीरवता
सपनों की माला मोल रही ।
तुम सो जाओ सजनी, निशि की अंधियाली में
मेरा मानस उलझ रहा अलकों की घन जाली में

**

आसंगिनी | राजेन्द्र प्रसाद सिंह

साथ मेरे चल रही है
इत्र में डूबी हवा ।
तो अकेला मैं नहीं हूँ ।
आज कितने बाद जूड़े-सा बँधा मन,
एक अँजुरी फूल-सा हलका हुआ तन,
धमनियों में बज उठी है
शरद-पूनो की विभा
तो अकेला मैं नहीं हूँ ।
अब गगन है रेशमी आँचल रुपहला,
तारकों में प्यार का रोमाच पहला,
चाँद के हँसते नयन में
बन गई काजल घटा
तो अकेला मैं नहीं हूँ ।
चाँदनी आसग में खिलती हसी है,
चूडियो की खनक मर्मर में बसी है,
क्रीम की इस झील पर है
पाउडर का कोहरा ।
तो अकेला मैं नहीं हूँ ।
सदियाँ कर पार बरसों की निमिष मे,
मै खुलाब्रुत पर खडा ठढी तपिश में,
बाहुओ मे बध गई
सुकुमार शीशे की लता
तो अकेला मे नही हूँ ।

**

दो रुबाइयाँ | रामरिख मनहर

मन गया है यों उचट ज्यो अनलिपा सा ठाँव हो,
प्यार का परिचय झुलसती दुपहरी की छाँव हो,
वेदना कुछ यो विरह की एक धुँधली शाम-सी,
जिन्दगी कुछ यों कि ज्यो बेटी पराये गाँव हो ।

कुसुम-काया कनक-सी पाँखुरी की लाज खोती है,
महक से बावली माटी बहुत यों आज होती है,
नयन उन्माद से तन्द्रिल, अधर मुस्कान से बोझिल—
जरा धीमे चलो ऐसे बहुत आवाज होती है ।

**

गीत । वीरेन्द्र मिश्र

बादल क्या आया बिजली फुहार ले आया
कुछ भीगे इन्द्रधनुष, कुछ तुषार ले आया।

पूरबी अलापों के सरगम वापस आये
घूमती निगाहों के संगम वापस आये
कामधेनु खोयी थी रिमझिम अमराई में
युग्म तनों की हिलती मिलती परछाई में
भीगा-सा पवन सभी को बुहार ले आया
कुछ कुछ मनमौजीपन, कुछ गुहार ले आया

रूठ रहे गीतों के देव सभी मन गये
मौसम की चलती में आँसू तक छन गये
लोचन वे जो उठे रुआंसे थे जो कभी
तृप्ति के निकट आये प्यासे थे जो कभी
बूँदों का सृजन सभी का पुकार ले आया
उपालम्भ, मान, साध, छल, दुलार ले आया

बैजनी समदर के कंधे पर एक शाम
सिर धर कर सुस्ताई पाने कब का विराम
झीनी रंगीन मुलायम चूनर धूप की
सहसा ही सिमट गई छाया में रूप की
घन का सचरण सपन बेशुमार ले आया
जिसके सुख का न अंत वह खुमार ले आया

***

गीत । लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर'

पंचदेवता, तुमने दी है मुझे सर्जना-प्रेरणा।,
प्रतिमा निर्मित हुई, मृत्तिका में तुम अपने प्राण दो।
चाह रहा, वह स्वप्न सत्य हो जो रह गया अधूरा,
चाह रहा, वह भाव व्यक्त हो जो न सका हो पूरा;
अभिव्यक्ति पा सकी नहीं जो मेरे मन की भावना,
वह होगी साकार, कण्ठ में भर तुम अपने गान दो।
रेखाओं में बँधी न अब तक जो अतृप्त आकांक्षाएँ,
दूर रही हैं रंगों से जो स्वप्निल मन की इच्छाएँ,
दूँगा उनको रूप, सत्य में परिणत होगी कल्पना,
मिल जायेगा लक्ष्य, दृगों में तुम निज ज्योतिर्दान दो।
'मैं' बन कर तुमने ही प्रतिमा काया का निर्माण किया,
और तुम्हारे चरणों पर कर्त्तृत्व-भावना-दान किया,
अमर बनाओ इस प्रतिमा को, अमर तुम्हारी अर्चना
होगी, इस मंगल-वेला में वरदहस्त भगवान दो।

**

डा० जगदीश गुप्त
वीरेन्द्र कुमार जैन
डा० सिद्धनाथ कुमार
दिनकर सोनवलकर
राम नारायण उपाध्याय
सिद्धेश
सुरेश दुबे 'सरस'
नृपेन्द्र नाथ गुप्त
गिरजा कुमार माथुर
शिवनारायण उपाध्याय
विजयचंद जैन
राम सेवक श्रीवास्तव
डा० रमेश कुन्तल मेघ
राजा दुबे
नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी
भागीरथ भार्गव
आनन्द भैरव शाही
दीनानाथ शरण'
चन्द्रमौलि उपाध्याय

नयी कविता

डा० अमृता भारती
आनंद शंकर माधवन
छविनाथ मिश्र
केदार नाथ सिंह
अनुरंजन प्रसाद सिंह
रामावतार चेतन
राम नरेश पाठक
कमल नाथ मिश्र
महेन्द्र कार्तिकेय
रामनिरंजन 'परिमलेन्दु
डा० सुरेशचन्द्र गुप्त
मनोरंजन अगार
राजेन्द्र संजय
नागानंद मुक्तिकंठ

विदा

—डा० जगदीश गुप्त

आकाश के कोंछे में
अखत-चावल;
किसी ने किसी को
इस उदास साँझ में
विदा किया।

**

अपारोक्ष

—वीरेन्द्र कुमार जैन

मेरी वासना पराजय नहीं जानती:
मेरी कामना विफलता को नहीं
पहचानती
निखिल 'कॉस्मस' उसमे
अविरल आप्यायित है:
मेरा हर काम्य उसमे
अविकल वलयित है।
यह, वह, तुमसे बाधित,
सीमित नहीं है मेरा प्राप्तव्य
मेरी आत्मा की उत्तरार्शिनी
जो भी है, जहाँ भी है--
उसे मेरे पास आने से रोक दे,
ऐसी कोई शक्ति विद्यमान नहीं है
सत्ता मे
ऐन्द्रिक, अतीन्द्रिक, जो भी
भोग्य है, अनुभव्य है,
उस सबको विसर्जित कर
उसे मैंने चाहा है।......
तब यह एक अविकल्प स्वयम्-सिद्ध
सत्य है
कि स्वयम् पूर्णकाम, आप्तकाम
अविकल सत्ता को—
मेरे काम्य का सर्वकाम पूरन आकार लेकर,
अवतरित होना ही पडेगा—
और मेरे पास आना ही पडेगा।

**

आश्रम का मृग

—सिद्धनाथ कुमार

मन के तट को छूने को लहरें उमडती हैं,
अब मैं उनमे कागज की नावें नहीं छोडता ।
सपनो की अमराई में कोयल चिल्लाती है,
अब मैं अपना स्वर उसके साथ नही जोडता ।

स्मृतियो की रंगीन तितलिया डाली-डाली उडती हैं,
अब मैं उनके पीछे-पीछे नही जाता ।
अब मैं कविताएं लिखता नही, पढाता हू,
अब मै गीतो को गुनगुनाता नही, नही गाता ।
अब मै समझदार हो गया हू ।
अब मैं आखेटक बन गया हू ।

बादलो की धूल उडाता,
मेरा रथ दौडा जा रहा है ।
मेरा बाण शरासन पर चढे हैं,
अब मै लक्ष्य-वेध कर दूंगा ।
लेकिन,
लेकिन वन-प्रान्तर को चीर कर,
क्यो यह आवाज मेरे पास आती है ?
[जैसे मैं सोया हूं, मुझको जगाती है]—
'यह आश्रम का मृग है,
इसे मत मारो, मत मारो, मत मारो।'

**

कोहरा और चाँद

—दिनकर सोनवलकर

उदासी का कोहरा ही कोहरा
भर गया है मन के आसमान पर ।
और डूब गई हैं
यादो की पहाडियाँ ।
गीत-विहग
सो रहे हैं अपने-अपने नीड में ।
कब निकलेगा दर्द का सूर्य ?
कब हटेंगी ये कोहरिल परतें ?
और कब देख सकूंगा मै
तुम्हे
यादो की पहाडियो पर
सूरज मुखी-सा खिलता हुआ ?

**

मन की राह

—राम नारायण उपाध्याय

कभी-कभी मन गैल बिसर जाता है।
श्रौर तब वह श्रनजानी गलियो में भटकता,
श्रनजाने राज मार्गो पर मंडराता,
श्रौर सुनसान पगडंडियो मे श्रपनी राह खोजता है।
लेकिन उसे राह नही मिलती, सो नही मिलती,
लाचार वह कुंडली मार कर बैठे हुए सांप की तरह
श्रपनी श्रतरात्मा मे झांकता है,
श्रौर उसे राह मिल जाती है।

**

वंशानुक्रम

—सिंह

हम पीले घास की तरह हैं
जहां सूर्य की गरमाई
मिजाज के बदनमीज कीडे पैदा होने
नहीं देते
पर तापक्रम इतना है कि
हम हरिया नही पाते।
हम किसी लावारिस गाछ के
वे बेश्रावाज पत्ते हैं
जहां हवा का एक कतरा भी नहीं श्राता
श्रौ' जो वह श्रकेलेपन को सोख-सोख
जीवित है।
हम सभ्यता के वे श्रडे हैं,
जिसमे श्रजीवित घुटन लिये
बन्द हैं।
श्रौ' हमारे चारो श्रोर एक मजबूत
दीवार है।
हम उस मुहूर्त तक कैद हैं
जब हमारी मुर्दा दीवार फोडी जायेगी,
हमारी नवजात जीवित लाश को
कोई हजम कर जायेगा।
श्रौ' हमारा वश नाश होगा ॥

**

आकाश, चाँद और सितारे

—सुरेश दुबे 'सरस'

वितान-सा तना
यह नीला आकाश
जैसे सुनील चंदोवा
या,
फैली हुई छतरी
माथे पर ।
चमचमाता हुआ
यह चांद
जैसे चांदी का कटोरा
उबटन भरा हुआ ।
छितराये हुए
जहां-तहां
ये सितारे,
जैसे छतरी में
हल्दी के छींटे ।

**

संताप

—नरेन्द्रनाथ ऋषि

तुम्हारे हृदय की गति तूफानों से भी तेज
हू-हू की सी करती हुई ।
शून्य आकाश मे भटक गया हूँ ।
ओ मेरे नाविक
मुझे नौका दो, पतवार दो, डुबकी नहीं
यह खाई, यह घुमावदार पेंच
जो मुझे निगल जाना चाहती है ।
मैं गिरना नहीं चाहता हूँ ।
पत्थर हूँ पिघलना नही चाहता ।
तूफान से घबडाता हूँ,
शून्य आकाश कुछ मांगता है, शायद हृदय की गति
किन्तु मै दे नही पाता हूँ
कहीं सूरज न उग जाए
और मैं कुम्हला न जाऊं, इस लिये घबडाता हूँ ।

**

इतिहास : एक विसंगत क्रम

—गिरिजा कुमार माथुर

खाली, निस्संग तुला
नंगी तलवार हाथ
इतिहास अंधा है—
सदियो का विकल शोर
अभय याचना अछोर
शब्द-सोख प्रस्तर स्फिंकस-सा
अचल कठोर
इतिहास बहरा है—
युद्ध, ध्वस-तूफान
पृथ्वी की बाल मूर्ति
पचामृत रक्त स्नान
न्याय असहाय
अन्याय दृप्त बलवान
स्वीकृति सब की समान
इतिहास गूगा है—
हाथ सिद्धियां नवीन
किन्तु विश्व पगु, दीन
ज्ञान सब विवेक रहित
उपयोग दिशा हीन
इतिहास लंगडा है—
नकली खिलौने हाथ
तर्क, वाद सब अनाथ
अर्थ सभो आरोपित
सदर्भ भरम जात
इतिहा सबच्चा है—

**

हम-सब

शिवनारायण उपाध्याय

हम सब पत्थर की दीवारे
अपने मन को ठोक पीटकर
घन छैनी से नोक छीनकर
खडी हुई हैं
अपनी जिद पर अडी हुई हैं
किन्तु हमारे भीतर बाहर कई दरारें
हम सब पत्थर की दीवारें ।

**

सत्य और नंगी उपमायें—

विजय चन्द जैन

प्रिये—
तुम चान्द की मानिन्द खूबसूरत हो,
और चान्दनी की तरह सफेद—
नहीं कहूगा मैं ऐसा....
......क्योंकि—
बेचारा—
दागलगा—
थाल की तरह गोल,
दिवालिया चान्द—
तुम्हारे किताबी चेहरे के,
दिलकश लम्बोतरे नकूश,
कहा से पा सकता है ?
......बेचारी,
मुहपिटी—
रगरहित, बुढियाई गरीब चान्दनी,
कोढ की रोगिणी सी,
तुम्हारा ये अधगोरा,
गेहुआ, खुशबूभरा,
दिप दिप करता सलोना रग—
कहा से ला सकती है ??
'दुक्खो की काली घनी रात,
कल बीत जायेगी—
और नये जागरण की सुबह जनेगी
—नही' कहूगा मैं ऐसा।
क्योके—
हर रोज जन्म ले लेने वाली।
ये सारी मामूली सुबहे—
अपने पेट मे
रात का एक वारिस भी छुपा कर लाती हैं।
खेल कूद मे जीती ये सब साधारण बाडिया।
चुपके से दोबारा मात में भी बदल जाती हैं।

इसलिये नहीं कहूंगा मैं ऐसा ।
अपने उस अभूतपूर्व जागरण को—
किसी मामूली,
'समन्वयवादी'
दोगली !! सुबह के जैसा ।
संघर्षों के बाद मिलने वाली—
हमारी प्यारी शान्ति,
दुलारी शान्ति,
को नहीं कहूंगा मैं 'फाख्ता' ।
सुन्दर से ज्यादा लड़ाका ।
(कहने को चिड़िया—
पर बारूद की पुड़िया)
शान्ति की गलत प्रतीक ।
उसकी उल्टी ।
—प्रिये—
जीवन का सत्य इतना अधिक व्यापक होता है
और इतना ज्यादा फैलावदार—
कि उसको सम्पूर्ण व्यक्त कर सकने में,
लगड़ी उपमाओं से बटी—
ये कच्ची डोरियां ओछी पड़ जाती हैं
जब कि—
गगन की तरह फैली,
हिमालय की तरह ऊंची,
जीवन की सर्व-व्यापी सच्चाई
किसी बौनी उपमा की मोहताज नहीं हुआ करती

**

प्रतीक— रामसेवक श्रीवास्तव

अक्सर निरभ्र आकाश में
समतल मैदान के किसी भी छोर में
दिखती हैं कुछ ऊंची चोटियां
बर्फ के पहाड़ की—
जिनमें है दबे हुए
बागों में दौड़ते वसन्त के रथ ।

**

सहवर्ती हाशियो के रुपहले-सुनहले छींटे—
औ' नीले, औ' पीले, कुंकुमी कांचो पर
छलछलाते हाथ—
परिशिष्टो मे पुरुष को रेखांकित कर गए हैं
मंजरियो से खिलने की गुप्त बात क्या
कह गये हैं ?

इन क्षमा—वर्षो मे
कांत सरिताओ पर रेत पड चुकी है।

वे कर गए है
अधूरे सभी काम.
अधूरी विदा, या अधूरा प्रणय,
अधूरा शशी, या अधूरा विषाद:
माध्यम बना कर मुझे ।
तुम्हारे मुख से पूर्ण होने को अधूरा—वो चंद्रमा।
अधूरा विवेक है वसत को पागल बनाने को ।।
अधूरे प्रतीको की बाधा ही कहे औ' बहे,
औ' गुने,
स्वय से कहे, ता। क्या कहे—?
चुप-चुप सुनें।
झुक लुक—सहे ।।

स्फीति

—रमेश कुन्तल मेघ

**

आग्रह

—राजा दुबे

मुझको इतना व्याप्त लो
जैसे रक्त-मांस-मज्जा
मुझ को इतना अग लगा लो
जितना आगन का बिरछा
घर की पूसी
भाभी का बच्चा
मुझ को ओढो या सहो मत जियो
मुझ में रस मत लो पियो
तुम बहती-बहती मुझ मे एक नदो
हरी-हरी वन-राशि
उडता-उडता बादल

**

समवेत हम

—नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी

साँझ के कुहरा सने
इस झुटपुटे में
स्नेह कमल के सम्पुटो मे
समवेत हम जब बंध गये
तब दर्द मेरा, तुम्हारा,
या किसी और का हो
सहेगे बाँट कर
हम सब सहेगे।
प्रात
सूरज उगने से
संध्या ढलने तक की
लहू-लपट,
और उस बाद मे फिर—
सम्पुटो में बंद हो कर
सुख का मकरंद
सारा ही पियेंगे—
समवेत हम !

**

बहुत पहले . एक दिन

—भागीरथ भार्गव

बहुत दिनो पहले सोने की लंका का रावण
ले भागा था सीता को,
वह सीता, सोने के परकोटे मे
अब भी दैत्यो की दास बनी है।
सीता की चित्कारो को सुन
वृद्ध जटायु ने खून बहाया था
अब भी मैं वे चित्कारे सुनता हूँ
जिन को सुन-सुन खून उबलता मेरा।
पंख जले-जलने दो
पीर मिले-सह लूगा मैं
पर मुझ को सीता को मुक्त कराना है
हारा था वृद्ध जटायु पहले
पर मुझ को हार नही मिलनी है।

**

पराग

—आनन्द भैरव शाही

पल भर को
हमतुम बैठे जहाँ
अभी यही था ठहरा
बर्बर लुटेरो का हिंस्र कारवाँ
(उड उड़ कर धूल ने
ढंक डाले पैरो के वे विरुप चिह्न ।)
वीतराग भूरापन
ज्यो का त्यो है घना ।
हम दोनो बंध जाते
समतल गोलाई मे वृत्त-मे क्षितिज के,
दिख जाते छोर, पर,
अन पायी राहो के, अब भी जहाँ-तहाँ—
इधर . यहाँ . वहाँ ।
और, कहीं कोई भी नहीं पासबाँ ।

***

गुलाब, गिरगिट और सिगरेट

—कैलाशनाथ 'अरुण'

ओ चिर प्रेयसि !
तुम गुलाब हो गुलाबी पंखुड़िया
कोमल तेरे अग-अग
गुलाब गाल गुलाबी आखे
सेट - सिंचित स्नो - स्निग्ध तुम
प्रेयसि युग - युग मे गुलाब रही ?
और गिरगिट है
गुलाब के तने
'प्रोफेशनल' प्रेमी 'रोमांटिक-मूड' मे
गिरगिट हमेशा रग बदलते है
अपवाद है और सत्य हर देश मे ।
ओ कॉमरेड प्रोफेशनल !
सिगरेट तुमने देखी होगी जरूर ही
आग मे सुलगती फिर नष्ट होती हुई
कामना से राख होती हुई जिन्दगी
जिन्दगी युग - युग से सिगरेट है ।

**

परम्परा

—चन्द्रमौलि उपाध्याय

डूब रही है
गहरे, पानी में
एक माँ, !
उसकी सन्तानें
तट पर खेल रही हैं,
उनके हाथो मे हैं
बहुत से रंगीन गुब्बारे
चितकबरी गुड़िया
परम्परा टूट रही है।

**

अवसाद

—अमृता भारती

ओ वासंती पवन !
तुम फिर लौट आए हो
दिशान्तर से।
मुझे बताओ
पूरबी आंचल मे कितनी सौरभ है अभी
कितनी शेष है
और कितनी तुम चुरा लाए हो
ओ वासन्ती पवन !
तुम्हारा गीत सुन्दर है
मन-प्राण भी मद-बोझिल
तुम कहाँ से आए हो, किस दिशि से
कितने गीत छिपे हैं उस पूरबी अन्तर मे
कितने शेष हैं
और कितने तुम उड़ा लाए हो
ओ वासन्ती पवन !
मेरी आंखो मे झरते है
झर-झर-झर आंसू
कितना नीर भरा है उन पूरबी झीलो में
कितना शेष है
और कितना तुम सुखा लाए हो।

**

पूजा

—आनंद शंकर माधवन

मेरी चाह ही मेरी पूजा है।

मै एक दारोगा बनना चाहता हू
हवा का, आंधी का, बरसात का, बिजली का

मैं सत्ताधारी मन्त्री बनना चाहता हूँ
गंध का, प्रकाश का, नाद का, सब प्रकार के भावो और
विचारो का,

और मै राजाधिराज भी बनना चाहता हूँ
कीटाणुओ का, पशु-पक्षियो का, सारे ही जडचेतन पदार्थो का,

क्योकि माँ, मुझे मनुष्य का दासानुदास बनना जो है
तेरा परम प्रिय कार्य करना जो है
तेरे जैसे बनना जो है

**

यात्रा के नये पड़ाव तक

—प्रतिभा मिश्र

बहुत भटकने के बाद
तुम यहाँ तक आए हो
अपनी मुँहलगी यादो को
बहुत पीछे
छोड आए हो

सामने नीम के फूलो पर
उडती हुई मधुमक्खियाँ
अभी तुम्हारे पास से
भनभना कर
दीवार की दरार मे लगे छत्तो पर
बैठ जायेगी।
जीवन की सनातन प्रक्रिया को
एक नया अर्थ देगी,
आगे बढे तो
मुंह नोच लेगी।
आज का समूचा दिन
बिना कुछ सोचे-समझे बिताओ।
कुछ खोकर आये हो
थके-माँदे अलसाये हो
बहुत भटकने के बाद यहाँ तक आए हो।

**

नगर में वर्षा

—केदार नाथ सिंह

दूरियो के मस्तिष्क में
कबूतरो की उडान
जब मिटते-मिटते
एक धुंधले विचार की
नोक बन जाती है,
तब—
नगर की सडको पर
वर्षा शुरू होती है।
अचानक वर्षा में
लोग भूल जाते हैं चलने की दिशा,
और सिर्फ रक्षा करते हैं।
उन खाली जगहो की,
जो बूंद और बूंद की
धीमी गुनगुनाहटों के बीच
छूट जाती है।
और कुछ देर तक
कहीं कुछ नहीं होता
सिवा एक सूनी-सी कडकभरी कौंध के
जो वस्तुत
इतिहास से परे
लगातार, लगातार
कबूतरो की उडान है।
फिर सब कुछ शान्त हो जाता है।
और उस गहरी शान्ति मे
एक भीगी हुई पत्ती
दूसरी पत्ती से
झुककर
कुछ कहती है;
सुबह—
जिसे सारे अखबार छाप देते हैं।

**

धड़कनें प्रतिध्वनि

—अनुरंजन प्रसाद सिंह

तुम जो रात की धड़कन सुनते हो,
तुम जो लगातार अनिद्रा से बीमार,
जग कर,
द्वार के बन्द होने की काँच-किच् सुनते हो
सुनते जो हो तुम
दूर जाते रथ क पहिये की घड़घड़ाहट,
पसर कर क्षीण होता गयी कोई प्रतिध्वनिः
एक हलका शार-गुल
उस रहस्यमय निस्तब्धता क क्षणो मे
आधी रात को, आराम की घड़ियो मे
जब भूत की कब्र मे जगती है
दफनायी याद की लाशें—
उस समय मेरे काव्य की पंक्तियों को पढ़ने का स्वाद
तुम जान पाओगे,
जिनमे मैं घोलता हूँ—
(जैसे प्याले मे कुछ घोलता होऊँ)
स्मृति की व्यथाएँ
शोकपूर्ण सहार
आत्मा की फूलो में बसी दुखद इच्छाएँ
हृदय की बीमार अघायी हुई करुणा
और ?
और जो मुझे होना चाहिए था ।
वैसा नहीं हो पाने का पश्चाताप
जो साम्राज्य मेरे उपभोग के लिए बना था
उसका सत्यानाश
और किसी एक क्षण आया यह विचार
कि अगर मेरे जन्म लेने की बात ही टाली जा सकती
फिर मेरे जन्म लेने के बाद मे अब तक,
मेरे जीवन की सारी चीजें
जो आकार नहो ग्रहण कर सकी :
ये सारी चीजें घोलता हूँ
गहरी निस्तब्धता के अन्तराल में

जब रात धरती के छल-कपट को
अपने ओढने से ढँक कर
ऊँघती रहती है।
उस समय लगता है
दुनिया की छाती से उठती धडकन
मेरे कानो में प्रतिध्वनित हो रही है
जो छेदती चली जाती है
मेरे अन्तस्तल को
और तब मैं सुनने लगता हूँ
अपनी धडकन
अपनी ही धडकन का प्रतिध्वनि।

**

सेतु-संकेत

—रामावतार चेतन

आ अमन के चैन के प्रहरी
सिपाही बन्धु,
सेतु को बख्शो।
मत दिखाओ जोर,
कदमो एडियो का शोर,
सेतु को बख्शो।
ये कडे आदेश की लय से बंधे आघात
पुल से दूर रहने दो
सेतु के जरिये
किनारो को परस्पर बात कहने दो
सेतु पर आघात सामूहिक न ये लादो,
पार ही करना इसे
तो चाल बिखरा दो,
अन्यथा इसका कलेवर काँप जायेगा
चरमरा कर सेतु
धरती नाप जायेगी,

**

उत्सर्ग

—मनोरंजन 'अंगार'

लहरो की करतारी मे कैद — मेरा अपना सागर
जिसकी गहराई तक न नापी जा सकी थी
अब तो सूरजकी डकैती फल गई
रह न पाया एक कतरा स्नेहका
देख, धरती ने कलेजा काट खाई पाट दी।
होठ फूलो से रहे अनजान-मुस्काते
पर न काबू पा सका अब तक जमाना।
देख मेरी साधनाकी पुष्टता
श्रेष्ठ जन-आसन पडे पाषाण. घबराने लगे हैं।
अब न इतना स्नेह मेरे पर उलीचो
और इतना भी न कम जाए—
दाग मेरे श्वेत अंशुकपर लगे धो सके 'कास्टीक' न उसको
सत्य है कि-स्नेहके बढते ही फट जाता है गन्ना
और कमते स्नेह-मिट्टीपर 'कोहेसन' की अबोली
श्रृंखलाएं टूट जाती है।

**

देखता हूँ

—रामनिरंजन 'परिमलेन्दु'

एकान्त के जटिल सरोवर मे
क्रोडारत व्याल जैसी यामिनी,
चाँदनी के तारिकाखचित मन-सा संसार
मूक मर्मर के सजग प्रहर पर आलोडित,
तारो की राख बिखरी मेरे जीवन मे
श्वास-अभयराण्य के छाया व्यूह
मे बिखरी रश्मि-सैकत-राशि-सी
राख तारो की
धुआँ का घुटन तेज
आलोक के खंडहरो मे
दुर्गन्ध प्रेरक अंधकार ·
अस्तित्व-मर्मर के हिमगिरि पर बैठा हूँ—
ज्योति-अस्थियाँ
अरूप की अनामा हिमशिलायें
मौन का सरोवर · ···
देखता हूँ।

**

एकांकी

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

शम्भूदयाल सक्सेना

प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

सुमंगला

[सुमंगला और कैलाश । स्थानः—अस्पताल]

सुमंगला—[ऊँचे स्वर मे] मरीज नम्बर सत्रह !

कैलाश—भयमिश्रित उत्सुकता से । तुम आ गई नर्स ? आपरेशन आज ही होगा ?

सुमंगला—नहीं । डाक्टर ने कहा है, अभी दो दिन और रुकना होगा । हो सकता है, आपरेशन की जरुरत ही न पडे ।

कैलाश—(हँसकर) आपरेशन की जरुरत ही न पडे !—जैसे आपरेशन से डर लगता हो मुझे ?—लेकिन नर्स ! मै आपरेशन से नहीं डरता । सच मानो, मै बिलकुल नहीं डरता । मै जहाँ से लौटकर आया हूँ, वहाँ से बहुत लोग नहीं लौटा करते । वहाँ इन्सान के जिस्म की, उसकी जिंदगी की कीमत, बच्चो के खिलौनो से भी कम होती है । अभी तुम जिस आदमी से बातें कर रही हो दूसरे ही पल उसके चिथडे उड जाते हैं नर्स ! वह सब मैने अपनी आँखो देखा है, इतना देखा है कि अब और कुछ देखने की हौसला नही रही, देह का मोह भी नही रहा । ये आँखें न लौटे तो मुझे शिकायत नही है, आपरेशन हो तो उसका डर भी नही है मुझे ।

सुमंगला—आप हमेशा लडाई का ही जिक्र क्यो करते है ? कुछ और बाते नही कर सकते ?

कैलाश—नही । और कुछ मे सोच ही नही पाता । जिन्दगी मैने वैसे ही शुरू की थी, जैसे हर मामूली आदमी करता है । माँ-बाप गरीब थे, फिर भी उन्होने मुझे पढाया लिखाया, इस हौसले से कि पढा-लिखा बेटा बडी कमाई करेगा । मगर स्कूल का दरवाजा पार किया ही था कि वह सिलसिला बन्द हो गया । शादी हुई एक काली कलूटी, फूहड़ औरत गले मे बाँध दी गई । कहा गया अब तुम्हे कमाना चाहिये ।

सुमंगला—शायद हर माँ-बाप की यही चाह होती है। वे यहाँ तक गृहस्थी की नाव खे लाए है, अब पतवार बेटे को सम्भालनी चाहिये। वे क्या बुरा चाहते हैं?

कैलाश—शायद वे ठीक चाहते हो लेकिन इन्सान के चाहने से ही तो सब कुछ नही होता। पढने से पीछा छूटा, शादी हो गई तो मैं खुश ही हुआ। शादी, शायद हर नौजवान के लिये एक सपना होती है—मीठा और रंगीन सपना, लेकिन मेरा सपना तो जुड़ते-न जुड़ते टूट गया। बहू के नाम पर जो लड़की घर में आई, वह काली थी, बदशकल थी और बेशऊर भी थी।

सुमंगला—दुनियाँ के बाजार मे रग और सूरत की ही कीमत ज्यादा लगती है, शऊर सलीके की बात तो कहने-सुनने भर की है, चाहो तो उसे बना सभाल भी लो। लेकिन रंग और सूरत बदल लेना तो उस गरीब के हाथ की बात नही थी।

कैलाश—दुनियाँ मे बहुत-सी बाते होती हैं, जो अपने बस की नही होती। उस औरत को बरदाश्त करना भी मेरे वश की बात नही थी। उस पर तुर्रा यह कि उसे गहने चाहिये, कपडे चाहिये, यह चाहिये, वह चाहिये···।

सुमंगला—सपने जैसे आप के मन मे बसे थे, शायद वैसे ही उस गरीब के मन में भी हो। शायद ब्याह के बाद उसने भी नई जिन्दगी के सुनहले सपने देखें हो, लेकिन सपने तो सपने ही होते हैं। कब किसी के सपने सच हुए हैं?

कैलाश—तुम सच कहती हो नर्स, सपने किसी के सच नही होते, फिर भी सभी लोग सपनो ही मे खोए रहते हैं। बीबी मेरे लाये गहने-कपडों के सपने देखती, माँ-बाप मेरे कमाए रुपयो की गठरी का सपना देखते, मै खूबसूरत और हर हालत मे खुश रहने वाली बीबी के सपने देखता, लेकिन सपने सब के अधूरे रहे। मै काम की खोज मे थकता जा रहा था, छीजता जा रहा था। बीबी ताने देती, माँ-बाप दुश्मन समझते, मेरी जिन्दगी दूभर होती जाती।

सुमंगला—जमीन की सचाई से आँखे मूँदकर आसमान पकड़ने के सपने देखने का यही नतीजा होता है जमीन तो छूट ही जाती है, आसमान भी हाथ नही लाता।

कैलाश—मैं घर से भाग आने के मंसूबे बांधता, खुदकुशी कर लेने को आमादा होता—कर कुछ न पाता। तभी लड़ाई छिड़ गई। फौज में भर्ती होने लगी। पैसो की उम्मीद सामने आई। मैंने किसी से कुछ कहा नही, सुना नहीं, आकर फौज में भर्ती हो गया। जिऊंगा तो मां-बाप को पैसे मिल सकेंगे, मर जाऊंगा तो जंजाल से छूट जाऊंगा। इस जिंदगी से मौत ही क्या बुरी होगी ?

सुमंगला—और जिसे ब्याह कर लाए थे उस गरीब का आपने कुछ ख्याल नही किया ?

कैलाश—उसी ने मेरे रंगीन सपनो का खून किया था। उसी ने मेरे जगमग मन को घने अंधेरे से भर दिया था। उसकी बदसूरती मै किसी तरह बर्दाश्त न कर पा रहा था, फिर उसे भी तो मुझसे पैसे ही चाहिये थे—पैसे, गहने, कपड़े।

सुमंगला—मां बाप को पैसे चाहिये थे, बीबी को गहने-कपड़ों की चाह थी, आप रूप के प्यासे थे, हर किसी को किसी ऐसी चीज की तलाश थी, जो उसे मिल न पा रही थी। फौज मे भर्ती होकर आपने मां-बाप और बीबी की जरुरतें पूरी करने की कोशिश की, लेकिन आप के लिये किसने क्या किया ?

कैलाश—मैं शायद वैसी किस्मत ही लेकर नही आया था कि कोई मेरे लिये कुछ कर पाता। लेकिन फौज मे भर्ती होकर मेने देखा, मैं दूसरी दुनिया मे आ गया हूं, जहॉं 'आदमी-आदमी' नहीं है मशीन है। कत्ल करने की' मारने की मशीन। वह हर महीने चांदी के चंद टीकरे इसलिये पाता है कि या तो मर जाय, या जब तक जी सके, दूसरो को मारता रहे। हम मे से किसी को यह मालूम नही था कि दुश्मनो की फौज के हमले से क्यो हमारा मरना जरुरी है, या कि किस वजह से हमे दुश्मन के सिपाहियों को मारते रहना चाहिये। वहां कोई हमारा जानी दुश्मन नही था, हमे किसी से कोई बैर नही था, किसी पर कोई गुस्सा नही था, फिर भी हम मारते थे, मर जाते थे। हम एक दूसरे पर गोलियां चलाते थे, बम फेंकते थे और झुंड के झुंड बेगुनाह आदमी चिथड़े-चिथड़े होकर रह जाते थे, मौत हमारा खेल थी। मौत हमारे लिये दिलबस्तगी का सामान थी।

सुमंगला—देखती हूं मौत की दहशत से अब भी आपका दिल भरा हुआ है।

कैलाश—नहीं। मौत के सामने पहुंच जाने पर मौत की दहशत नही

रहती। तब मौत एक तमाशा बन जाती है। लेकिन मैं तुम्हे अपनी कहानी सुना रहा था। लडाई के मोर्चे पर पहुँचा, तो मैंने देखा, दुनियाँ का नक्शा ही बदल गया है। लडाई रुपये पैसे नही मांगती, गहने-कपडे भी नही मांगती, वह मांगती है हमारी जिन्दगी, वह हमारे लिये मौत का दरवाजा खोलकर हँसती है, खिलखिलाती है। यहाँ प्यार नही है, नफरत नही है, नाते-रिश्ते नही है, है सिर्फ मार डालना, मर जाना। और मौत जहाँ इतनी नजदीक होती है, इतनी आसान होती है, वहाँ जिन्दगी के पावने को ज्यादा से ज्यादा वसूल लेने की ख्वाहिश भी वैसी ही तेज हो जाती है। जिन्दगी का लुत्फ पैसो के बगैर नही मिल सकता। अपनी जान को दाव पर लगाकर मै जो पैसे पाता, उन्हे माँ-बाप को भेज देता था, इसी से जब अचानक एक साथ ही दोनो के मरने की खबर मिली तो मुझे खुशी हुई। जिस जिन्दगी का एक पाँव कब्र मे है, उसके ज्यादा से ज्यादा मजे ले लेने का रस्ता अब साफ हो गया था।

सुमंगला—लेकिन आप की बीवी तो नही मरी थी शायद ?

कैलाश—उसे मैंने जिन्दा माना ही कब था ? वह एक गलती थी जिसे मन से दूर कर देने मे मुझे कोई हिचक न हुई।

सुमंगला—लेकिन उसका कसूर तो सिर्फ उसकी बदसूरती ही थी न ? बदसूरती, जिसमे उसका कोई हाथ न था, जिसे वह तमाम कोशिशो के बावजूद दूर न कर सकती थी। जो उसकी लाचारी थी, उसके लिये क्या उसे सजा मिलनी चाहिए थी ?

कैलाश—उससे नफरत करना मेरी लाचारी ही थी। दुनिया मे खूबसूरत औरतें भी होती हैं, भली और सलीकेदार औरते भी होती हैं। मुझे ही क्यो वैसी बदसूरत और फूहड औरत मिलनी चाहिये थी ? जो मेरा कसूर नहीं था, मुझे उसी के लिये सजा मिली थी, फिर अगर उसके साथ भी वैसा ही हुआ तो मै क्या कर सकता था ?

सुमंगला—(व्यंग्य की हँसी) आप की दलील बेशक मजेदार है। आप के माँ-बाप मर गये थे, बीबी को आपने जीते जी मार डाला, फिर क्या हुआ ?

कैलाश—फिर मौत की इस धधकती लपटो के बीच भी जिन्दगी रंगीन हो उठी। अब मेरे पैसो का हिस्सेदार कोई न था। जब कभी छुट्टियाँ होती, जब कभी मौका मिलता, जब कभी हम बमो, मशीनगनो और राइफलो से अलग हो पाते, जी-भर गुलछर्रे उडाते जश्न मनाते, मौज करते।

सुमंगला—और इस मौज-मस्ती के बीच आप को कभी उस गरीबिन की

याद न आती, जिसके लिये आप के सिवा दूसरा कोई सहारा न था ?

कैलाश—नहीं। मैंने अपने मन की जमीन से उस कांटेदार पौधे की जड़ काट दी थी। मैं खुश था, बेफिक्र था, मरने के इन्तजार मे बरसो पर बरस बीता चला जा रहा था और तभी तभी एक दिन।

सुमंगला—आप जख्मी हो गए।

कैलाश—जख्मी उससे पहले भी कई बार हुआ था, लेकिन तब जख्म मामूली थे। छुट्टी का एक बहाना बन जाते थे, कुछ दिनो मौज-मजे के लिये एक राह निकल आती थी। इस बार मौत की गोद मे जाकर भी लौट आया। चोट माथे मे लगी थी—गहरी चोट। हफ्तो मौत और जिन्दगी के बीच झूलता रहा। मौत सिर्फ आंखो की रोशनी लेकर लौट गई। मर भी जाता तो बुरा क्या था ? जी भी रहा हूं तो क्या हर्ज है ?

सुमंगला—दुनिया मे कई किस्म के लोग होते हैं। कुछ के हिस्से मे पाना ही पाना होता है, कुछ के सिर्फ खोना। आपने जिन्दगी पाई है तो आंखे भी पा सकते है। उम्मीद पर ही तो दुनिया कायम है (आवाज कांप जाती है)।

कैलाश—जिन्दगी से अपना पावना मैंने वसूल कर लिया है नर्स। अब कुछ पाने का अरमान नहीं रहा, खोने का अफसोस भी न होगा शायद। लेकिन तुम लेकिन तुम्हारी आवाज ऐसी नम क्यो हो रही है ?

सुमंगला—मुझे अचरज हो रहा है। जिन्दगी इतनी रंग-बिरंगी है, लेकिन हर जिन्दगी की कहानी एक-सी ही क्यों होती है ?

कैलाश—(कुछ उत्तेजित) तुम किसकी बात कहती हो नर्स ?

सुमंगला—और किसकी कहूंगी ? मै आप की कहानी सुन रही थी और मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे थोडे मे उलट-फेर के साथ कोई मेरी ही जिन्दगी के पन्ने उलट रहा है। मेरे शौहर भी छोडकर लड़ाई पर चले गए। मेरे भी सास-ससुर मर गए। उनके मरने के बाद रुपये आने बन्द हो गए, खत-किताबत भी नहीं रही। मैंने इन्तजार किया, खत लिखाए, हर सूरत से उनका पता लगाने की कोशिश की। फौजी दफ्तर से एक खत आया कि वे लडाई मे मारे गए। जांच होने पर मुझे पेंशन मिलेगी। मैंने उसका भरोसा नही किया। नर्सिंग सीखी अपनी तबियत से यहां आई। आज आप लोगो की सेवा कर रही हूं। मुझे सतोष है कि जिन्दगी दस के काम आ रही है। यह बड़ी बात है।

कैलाश—सचमुच, कैसी अचरज की बात है ! हर आदमी अपने-अपने ढग से जीता है और आखिर में संतोष कर लेता है। संतोष न करे तो दूसरी राह भी कहाँ है ?

सुमंगला—जो संतोष लाचारी से पैदा होता है, उसे ठीक-ठीक संतोष नही कहते, लेकिन छोडिये इन बातो को। आप आराम कीजिये। मेरी ड्यूटी का वक्त हो रहा है।

कैलाश—तो परसो आपरेशन होगा न ?

सुमंगला—हाँ परसो।

दूसरा दृश्य

(सुमंगला और कैलाश)

कैलाश—(गीला स्वर) नर्स !

सुमंगला—कोई तकलीफ है आप को ?

कैलाश—(करुण स्वर) तकलीफ ? (पीडा-मिश्रित हँसी) तकलीफ कहाँ होती है ? किसे होती ? कब होती है ? मुझे शायद इसका एहसास नही रहा। डाक्टर ने कहा, आपरेशन कामयाब नही हुआ। जिस चोट ने मेरी आँखें ले ली, वह मेरी जान भी ले सकता था। जान अगर चली ही जाती तो बुरा क्या होता नर्स ?

सुमंगला—(काँपकर) ऐसा न कहिए आप !

कैलाश—क्यो न कहूँ नर्स ? मेरे मर जाने से किसी का बिगड़ता ही क्या ? किसी का नुकसान ही क्या होता ? लेकिन तुम्हारी यह बदलती हुई आवाज आज मेरे मन मे एक धुँधली-सी याद जगा रही है। ऐसा लगता है, जैसे यह आवाज कभी की सुनी हुई है। याद नही, याद नही आता कब ऐसी आवाज सुनी थी, कहाँ सुनी थी !

सुमंगला—(कातर) मेरे लिये इतना भी क्या कम है।

कैलाश—तुमने क्या कहा नर्स ?

सुमंगला—कुछ भी नही। अगले हफ्ते आप अस्पताल से छुट्टी पा जायेंगे। मै सोचती हूँ फिर आप कहाँ जायेंगे ? क्या करेंगे।

कैलाश—(व्यथित) मै कहाँ जाऊँगा ? दुनिया में ठौर ही कहाँ है मेरे लिये ? सोचता हूँ सब दिन अस्पताल ही मे रह सकता तो आंखो के जाने का अफसोस न होता।

सुमंगला—लेकिन यहाँ क्या सुभीता है आप को ? अस्पताल में तो कोई

नही रहना चाहता सब दिन ।

कैलाश—यहाँ और कुछ न हो, तुम तो हो। आँखें खोकर मैं बेसहारा हो गया हूँ। मुझे सहारा चाहिये नर्स मै सोचता हूँ मुझे तुमसे बड़ा सहारा और कहाँ मिल सकता है ?

सुमंगला—(काँपकर) लेकिन मैं तो सिर्फ एक मामूली नर्स हूँ। मै आप का सहारा कैसे बन सकती हूँ ?

कैलाश—औरत को अब तक मैंने खिलौना ही जाना था नर्स ! पहली बार तुम्ही ने मुझे बतलाया कि वह खिलौना नही, जिन्दगी का सबसे बड़ा सहारा भी है। अगर पल भर के लिये मेरी आँखो में रोशनी लौट आती तो मै सिर्फ एक बार तुम्हे ही देख लेना चाहता।

सुमंगला—(जैसे रो पड़ी) नही, नही, आप ऐसा न कहिये। जब आंखे थीं, तब आपने देखकर भी मुझे नही देखा था, आंखो के न रहने पर आप मुझे देखना चाहते हैं, लेकिन सचमुच अगर आप मुझे देख पाते तो क्या ऐसी बातें आप फिर कह सकते ?

कैलाश—(उद्भ्रान्त) तुम.. तुम कौन हो ? तुम क्या सुमंगला हो ? सुमंगला।

सुमंगला—(रोकर) मै वही अभागिन हूँ, लेकिन .

कैलाश—तब भीख मै नही माँगूगा, अपना हक ही मांगूगा। एक दिन जिसे मैंने खो दिया था, आज वह अपने आप मुझे आ मिली है।

सुमंगला—जिन्दगी आपने भूलो से शुरु की थी अब भी भूलते ही जाना चाहते हैं ? जो हक खो जाता है, वह मांगने से नही मिला करता। एक दिन आपने जिसे पैरो की ठोकर से दूर कर दिया था, उसे ही आज इसलिये पास बुलाना चाहते है कि आप लाचार है ?

कैलाश—जो आँखें रूप देखती थी सुमंगला, अब तो वे आंखें ही नही रही। तुम मुझे माफ नही कर सकोगी ?

सुमंगला—माफी पाने या माफ करने की राह हम दोनो ही बहुत पीछे छोड़ आए है। अब इसका सवाल ही कहाँ उठता है ?

कैलाश—तब मैंने तुम्हे पहचाना न था सुमंगला।

सुमंगला—आप अब भी मुझे पहचानने मे गलती कर रहे हैं।

कैलाश—तुम मेरी व्याहता हो !

सुमंगला—जब थी तब आपने आंख उठाकर मेरी ओर देखना भी गुनाह

समझा था। अब तो मै सिर्फ एक नर्स हूं, मै उनके लिये हूं जो बीमार हैं, दर्द मन्द हैं, तकलीफ मे हैं। अब तो पति की नही, मरीजो की ही सेवा मेरे जीवन का व्रत है।

कैलाश—जो भटक कर दूर चला जाता है, उसे वापिस ही लौट आना चाहिये सुमंगला।

सुमंगला—भटके आप थे। आप लौट सके तो मुझे एतराज न होगा, लेकिन मेरी राह तो चुक गई है। सेवा की छोटी दुनिया से निकाली जाकर मै बहुत बडी दुनिया मे चली आई हूं। मेरे लिये अब राह ही कहां है ?

कैलाश—तुम मुझ से बदला लेना चाहती हो सुमंगला ? इसी मे सुख मिलेगा तुम्हे ?

सुमंगला—आप मुझे गलत न समझें (रोती-सी) एक दिन सिर्फ आप ही की सेवा का हौसला लेकर मै आपके घर मे आई थी। वह मौका मुझे मिला होता तो मुझ-सा सुखी कौन होता ? लेकिन मैं रूप नही ले आई थी, इसीलिये आपने हमेशा के लिये ठुकरा दिया मुझे। और अब, जब मै इन्सानियता की सेवा में अपने आपको खो चुकी हूं तो आप मुझे वापस बुलाना चाहते हैं ?

कैलाश—लेकिन मुझे तो तुमको ही पाकर संतोष होगा सुमंगला।

सुमंगला—आपका सन्तोष लाचारी से पैदा हुआ है, मैने सन्तोष को अपने जीवन की साधना बनाया है। सन्तोष की तो कोई शर्त नही होती, हो सकती भी नहीं शायद।

कैलाश—लेकिन अभी जब मैने अपने मरने की बात कही थी, तुम कांप क्यो उठी थी ?

सुमंगला—आप बने रहेगे तो मेरी मांग का सिन्दूर भी बना रहेगा। यह हमारा बहुत बडा बल है। गौरव है हमारा। यह हमें सही राह से डिगने नही देगा।

कैलाश—बस ?

सुमंगला—यह क्या बडी बात नहीं है ? जिन्दगी की अन्धेरी राह पर चलने के लिये रोशनी की कितनी जरूरत होती है ? हमारी मांग की यह लाल लकीर हमारी जिन्दगी की रोशनी ही तो है। उसे कायम रखना चाहे तो इसमें अचरज की क्या बात है ?

कैलाश—तुम्हे मुझ पर दया नही आती सुमंगला ? मै अन्धा हो गया हूं,

अपाहिज हो गया हूँ, मुझे सहारा चाहिये ?

सुमंगला—अन्धा हो या आँखो वाला, सहारा किसको नही चाहिये ? जो ढूढता है, उसे वह मिल भी जाता है। (रोकर) दुनिया बहुत बडी है, सहारे की कभी यहाँ कमी नही होती।

कैलाश—(व्यथित) तुमसे मुझे ऐसी उम्मीद नही थी सुमंगला।

सुमंगला—आपको मुझसे कैसी भी उम्मीद थी, यह मै आज पहली ही बार सुन रही हूँ, लेकिन अब तो बहुत देर हो चुकी है।

कैलाश—सुमंगला ! तुम अगर मेरे दिल की तड़प देख पाती…।

सुमंगला—चाह सब की एक होती है, राह एक नही हो पाती। (हलके रोती है) अरमान सबके दिल मे होते हैं, तड़प सब के मन मे उठती है… आप अपने सुख की तलाश मे गये थे, उसे पा नही सके, मै तो सबको सुखी देखकर खुश हूँ। अपनी-अपनी किस्मत अपना-अपना पावना। लेकिन अब मै चलूंगी, ड्यूटी का वक्त हो रहा है। (जाती है)।

कैलाश (आर्त स्वर मे) सुमंगला।

सुमंगला—(जाती-जाती) नही, नही मै सुमंगला नही हूँ, सुमंगला मर गई। मै नर्स हूँ। सिर्फ एक नर्स। (फूटकर रो पड़ती है)।

●●●

शंभूदयाल सक्सेना

सबसे बड़ी सेवा

देवदारु-वृक्षों की छाया में पत्तों से छायी एक कुटिया

दिन का तीसरा पहर

(कैयट पंडित भोजपत्रों पर लिखे एक ग्रन्थ का ध्यानपूर्वक अवलोकन कर रहे हैं। उनकी पत्नी शारदा इस चिन्ता मे बैठी है कि आज भोजन की क्या व्यवस्था होगी। अन्न समाप्त हो चुका है। नमक भी नहीं है। कुछ सूखे फल कूट कर रक्खे हैं, उनके साथ मिलाने को कुछ हो तो आज का काम चले। वह चुपचाप आकर ग्रन्थ में डूबे विद्वान् पति के पास खड़ी हो जाती है। परन्तु कैयट को उसे देखने की फुर्सत नही है। इससे उसके नारी-हृदय को ठेस लगती है। अतीत जीवन का सारा दृश्य उसकी आंखो के आगे खेल जाता है। सम्पन्न ब्राह्मण परिवार की दुहिता के भाग्य मे ये दिन भी बदे थे उसकी आंखो में, आंसू छलछला आते हैं पर वह उन्हे पलको मे ही थाम लेती है। कहीं पति के शरीर पर आंसू की बूंद गिर पड़ी तो उनका ध्यान भंग हो जायेगा। तभी बाहर किसी पदचाप सुनाई पड़ती है। घबड़ाकर बाहर झांकती है अतिथि के स्वागत की चिन्ता उसके चेहरे से स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। राजसी वेश मे एक आगन्तुक उसे दिखाई देता है।)

शारदा - (कुटी से बाहर आकर धीरे से) आप कहां जाना चहते हैं ?

आगन्तुक : मुझे कैयट पंडित से मिलना है। क्या यह उन्ही का स्थान है ?

शारदा - (स्वीकृत सूचक सिर हिलाकर) जी, वे सामने स्वाध्याय मे निमग्न हैं। (हाथ से बताती है।)

आगन्तुक क्या मै उनके सामने उपस्थित हो सकता हूं ?

शारदा - आइये, पर अच्छा होगा उनका ध्यान भंग होने तक प्रतीक्षा करने का कष्ट करें।

(दोनो का आगे-पीछे कुटी मे प्रवेश)

कैयट - शारदा !

शारदा - जी।

कैयट • (ग्रंथ पर से दृष्टि हटाये बिना) मुझे लगा कि जैसे तुम किसी से बोल रही हो ?

शारदा - आपको ठीक ही तो लगा, ये महानुभाव...

कैयट - (उसी तरह) ऐं ।

(तभी आगन्तुक आगे बढकर उनके चरणो पर नत होता है ।)

शारदा - ये महानुभाव

कैयट - कौन ?

आगन्तुक - मै काश्मीर-नरेश आचार्य को प्रणाम करता हूँ ।

(पुनः प्रणिपात)

कैयट - (ग्रन्थ पर से दृष्टि हटाकर) काश्मीर नरेश ! महाराज !

आगन्तुक - हाँ, भगवन् !

(शारदा चकित दृष्टि मे काश्मीर-नरेश को देखती है ।)

कैयट - (अप्रभावित) पर महाराज का यहाँ क्या काम ?

महाराज आप जैसे उद्‌भट विद्वान् इस प्रकार दरिद्र जीवन बिताये, मै अपने राज्य मे यह नही सह सकता । इससे राजा को पाप लगता है ।

कैयट - आप दुखी न हो राजन् , हम आपके राज्य को अभी त्याग देने को तैयार हैं ।

महाराज - यह क्या कहते है भगवन् !

कैयट - हम ठीक कहते है । हम आपको दुख देना नही चाहते । आपको पाप लगे ऐसा अपराध हम क्यो करने लगे ?

(उठकर खडे हो जाते हैं और अपनी चटाई लपेटने लगते हैं ।)

महाराज - आचार्य देव !

कैयट - (चटाई बगल मे दबा लेते है और अपना कमडल उठाते हुए) शारदा, तुम हमारे कागज-पत्र तो समेट लोगी ? (चलना चाहते है)

महाराज - गुरुदेव !

कैयट - (शारदा से) हम दरिद्र ब्राह्मणो के रहने से महाराज को पाप का भागी होना पडता है । इसलिए हम कही और चलकर बसेगे । क्या सोच रही हो तुम, ये ग्रंथ बांधकर ले चलोगी न ?

(शारदा आगे बढकर स्वामी के आदेश का पालन करने लगती है ।)

महाराज - (हाथ जोड़कर) दास का अपराध क्षमा हो भगवन् !

कैयट - आपका अपराध, आपका कोई अपराध नही है महाराज !

महाराज - मेरा यह आशय नही था ।

कैयट - आपने ठीक ही तो कहा है । दारिद्रय तो ब्राह्मण के भाग्य म लिखा रहता है । राजा उसके लिए पाप क्यो भोगे ? हमें पहले ही यह सोचना था ।

(शारदा से) देवी, तुमने पुस्तके बांध ली होंगी ?

महाराज - मै राजधानी से चलकर इसलिए नहीं आया भगवन् कि आपको अपनी कुटिया छोडकर निकल जाना पडे ।

कंयट - पर आपने तो कहा था

महाराज - वह मेरी भूल थी ।

कैयट - तब ?

महाराज - मै आपका आदेश लेने आया था ।

कैयट - मेरा आदेश ? कैसा आदेश ?

महाराज - यही कि मैं आपकी कुछ सेवा कर सकता हूं ?

कैयट - हां आप मेरी सेवा कर सकते हैं ।

महाराज - (प्रसन्न होकर) आदेश दीजिये भगवन् । उस सेवा से अपने को कृतार्थ करना चाहता हूं ।

कैयट - (शारदा से) देवी, महाराज हम लोगो की सेवा करना चाहते हैं ।

(शारदा पुस्तको की गठरी बांधकर रखती है और पति की ओर उत्सुकता से देखती है ।)

महाराज - विद्वानो और पंडितो को सुखी न रख सके उस राज्य को धिक्कार है ।

कैयट - तो आप हमारी सेवा करने को कृतसंकल्प हैं ? आप हमे सुखी रखने के लिए पधारे हैं ?

महाराज - भगवान् जाने, मे इसी हेतु आया हूं । मुझे पता न था कि आप इस प्रकार घोर कष्टो में रह रहे हैं ।

कैयट - कहां, कष्ट तो हमें कुछ भी नही हैं, और हमारी सब से बडी सेवा यही होगी कि आप फिर कभी यहां आने का कष्ट न करें ।

महाराज - (आश्चर्य से) ऐ !

कैयट - न अपने किसी राजकर्मचारी को ही भेजे ।

महाराज - यह क्या कहते है भगवन् ?

कैयट - मुझे किसी वस्तु की कामना नही है । मेरे अध्ययन मे विघ्न न पडे । यही मेरी सबसे बडी सेवा होगी । समझे, राजन !

महाराज - समझ गया, भगवन् !

(महाराज त्यागी ब्राह्मण की चरणरज सिर पर रखते हैं और चुपचाप निकल जाते हैं । शारदा घर की दरिद्रता पर गर्व अनुभव करती है और भूल जाती है कि उसके घर मे आज खाने को कुछ भी नही है । कैयट पंडित आराम स अपनी चटाई बिछाकर पहले की तरह बैठ जाते है और एक पुस्तक निकालकर पढ़ने लगते है और उसी मे खो जाते हैं ।)

परदा गिरता है

●●●

ओम तिवारी 'अरुण'

राजेन्द्र अवस्थी तृषित

शरद जोशी

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र

शैलेश मटियानी

भँवर लाल जोशी

विश्वनाथ

नवकथा

बिच्छू का डंक

--श्री ओम् तिवारी 'अरुण'

शिव का मूड था कि बिखरे हुए पारे की तरह पिछली शाम से सिमट ही नहीं रहा था। पारो चुपचाप खाट मे लगी उसकी प्रत्येक गतिनिधि देखती जा रही थी, लेकिन सुबह जब यह दूध वाली पर बिगडा तब उसका मौन टूट ही गया। बोली—'क्या सुबह ही सुबह सारा घर सिर पर उठा लिया? दूध वाली ने दूध नहीं दिया तो क्या सारी दुनिया में अब कही दूध नही मिलेगा? जाने क्यो, जरा-जरासी बात लेकर अपना और दूसरो का जी दुखी करते हो?"

शिव फिर भनभनाया—"सिर फिर गया है न मेरा! और जगह जो दूध मिलेगा, उसमे आधा पानी और आरारोट मिला होगा। ऐसे दूध की चाय से तो 'ब्लेक टी' कहीं अच्छी।"

"तो फिर, यही बात आहिस्ता मे भी तो कही जा सकती थी। 'ब्लेक-टी' अच्छी है तो वही क्यो नही चुपचाप पी लेते—इतना शोर-शराबा किस लिए?"

लेकिन अपनी आदत मे मजबूर शिव भला आसानी से 'ब्लेक-टी कब पीने वाला था। दूध वाली को ढेरो गालियाँ देते हुए उसने एक घूट भरा—"ओह—साली एकदम कडवी जहर है।" चाय का कडवा घूट थोडी देर हलक में सत्याग्रह करके जैसे-तैसे नीचे उतरा ही था कि पारो ने अपना कप खाली करते हुए एक कागज शिव की ओर बढाया, कहा—"कल शाम को डाक्टर कुछ गालियो और इन्जेक्शन लिख गया था—हो सके तो आफिस से लौटते समय लेते आना। रात को तुम तो बत्ती बुझा कर सो गए थे, मुझे बडी तकलीफ रही। और हाँ, देखो आफिस से सीधे घर आना, दिन भर अकेले पडे-पडे मेरा जी घबराता है।"

शिव का मन हुआ, कह दे 'तकलीफ रही तो मैं क्या करूं? सब कुछ जान-बुझ कर भी ...महीने का आखीर है, पहले मे कौडी नहीं, लेकिन तुम हो कि बस-बस—समझती हो जैसे वह मेडिकल स्टोर वाला मेरा या तुम्हारा बाप लगता है कि इधर पर्चा बढाऊंगा और उधर दवा मिल जायगी।' लेकिन वह उठ आया।

बाहर खुली सडक की भीड भाड मे वह तीव्र गति से बढा। 'ब्लेक-टी' की कडवाहट उसके मुंह मे अब भी बाकी थी। एक अजीब सी कडवाहट। नीरसता लिए वह थके मन-मस्तिष्क और बोझिल कदमो से आफिस पहुँचा—क्योंकि आफिस पहुँचना ही था।

वह घड़ी की ओर देखना नहीं चाहता था। क्या देखना ? रोज की देखी हुई चीज है। लेकिन अनचाहे ही आंख घड़ी पर पड़ी। ११ बज चुके थे। लाल फीते खोलना, नोट-शीट या ड्राफ्ट-शीट पर कुछ रटे-रटाए वाक्य लिखना, फिर लाल फीता बांधना—यह सब 'रोटीन वर्क' है। शिव इस सब में पारंगत है। लेकिन हाथ है कि बढ़ने का नाम नहीं लेते। काम नहीं करूंगा तो बचा हुआ काम कैसे पूरा होगा ? नहीं हुआ तो बस अब की खैर नहीं। वह साहब—और वही जो घड़ी के नीचे बड़ी-सी टेबल लगाए बैठा है—समझे ? अरे वही—जहां टेलीफोन रखा है—वही, जिसे लोग साहब कहते हैं। लेकिन साहब किधर से है ? साहब तो गोरे चिट्टे होते हैं—यह 'भाड़ का भुजा' साहब ६ महीने विलायत क्या रह आया है कि सिर विलायत की तरफ और पैर अपनी जन्म-भूमि की तरफ करके सोता है। सोता होगा—अभी जीभ मरोड़कर माथे पर बल डालते हुए मिमियाएगा—"मि० शिवकुमार, एरियर क्लीयर नहीं हुआ तो—तो 'आई मीन टु से, देन डोन्ट कम्पें भी फोर योअर रोल'। 'करेक्टर रोल' खराब करेगा—कर दे, यही तो ससुरे के पास एक तोप है। 'करेक्टर-रोल' न हुआ मेरा भाग्य हो गया—बेईमान कहीं का। खुद काम-धाम कुछ करना नहीं--बस दस्तखत करना या उस परकटी से इश्क लड़ाना। सोचता होगा कोई कुछ समझता नहीं। अरे, मैं सब समझता हूँ।

शिव मूड बनाने की गरज से चपरासी को चाय—नहीं-नहीं, जब उधार मिलती है तब क्यों नहीं स्पेशल चाय मंगाई जाए, स्पेशल चाय, दो पान और एक पैकेट सिगरेट लाने का आदेश देते हुए एक फाइल खोली। किसी एम० एल० ए० के सिफारिशी पत्र वह एक ही सांस में पढ़ गया। ढेरों गलतियां। धत् तेरे की, हिन्दी, मातृभाषा और उसमें भी गलतियां! वाह रे विधायक महाशय! खैर, दोस्त, भाग्यशाली हो ·· "अच्छा खाना, रहना, रोबदाब सब है ·· इस १०० रुपल्ली के ग्रेजुएट क्लर्क से तुम अच्छे हो।"

चपरासी चाय रख गया—स्पेशल चाय, खूब गहरी बादामी, ऊपर की मोटी पर्त। बस मजा आ जाएगा, अभी 'एरियर क्लीयर' होता है। शिव हाथ बढ़ाने को ही था कि तभी हाथ रुक गया और याद आई सुबह वाली चाय। कड़वाहट ·· ···पारो पारो · हां, पारो ने भी तो सुबह 'ब्लेक टी' ही पी थी और कहा था कि शाम को जल्दी घर आना, अच्छी चाय बनवा कर रखूंगी।

अच्छी चाय ! कौन बैठा है घर मे अच्छी चाय बनाने को ? पारो का दिमाग खराब है, खुद हिल-डुल नही सकती और · और·· अच्छी मेहरी का सहारा कितना है, काली-कलूटी बदजलन । दिन भर बर्तन घिसती है और रात को ढेर सारी ताडी पिए रिक्शे-तांगे वालो के साथ · । मेरा बस चले तो कमबख्त की बोटी-बोटी नोच डालू । रात रात ऐसा हुआ भी क्या था ? कौन-सा मैंने कोई दुनिया से अलग काम कर दिया था । लेकिन वही बात है, जमीन की धूल को ठोकर मारो तो सिर पर चढती है । बेहूदा कही की । मुझे आदर्शवाद का पाठ पढाने लगी थी । जरा हाथ ही तो पकडा था । इस पर हाथ झटक कर बोली—"ई का करत हो बाबू—ऊ और होइ हैं जो जौन थरिया मा खाय उइमें छेद करें ।" पूरी बात सुने बिना ही चली गयी । नाली के कीडे को नाली ही सुहाती है । आज ही मैंने उसे निकाल नही दिया तो शिव नहीं ।

चाय की गर्म सासें ठडी हो गई और शिव के मन का उबाल बढा । शरीर के अन्दर जाने कौन चलकर कह रहा था—'मुझे एक औरत चाहिए··· · पारो ? वह मेरे लिए अब बेकार है । मुझे बर्फ नही आग चाहिए हड्डियो की माला नही, गोश्त 'वह प्रन्य जो अग-अग को अपने में समेट ले । पारो के पास सिवाय दुर्गन्ध के और है ही क्या रिसते जख्मो की सडाध, दवा की बदबू नही नही वह बेकार है ।

'इसमे पाप क्या है ? रात के अधेरे मे मेहरी का हाथ पकड सकते हो, लेकिन दिन के उजाले मे धत् तेरे की । बुजदिल कही का । पाप और पुण्य की मीमासा तो अंगो की शिथिलता के साथ शुरू होती है—जब आग ही जलेगा तो क्या ? इसीलिये बूढे लोग ठडक की बात करते हैं । अब कौन जनता, मानता है, पुरानी दकियानूसी दलीलो को । ये ढेरो 'अल्ट्रा माडर्न' तितलियाँ वासना की भावना का जामा पहन कर क्या-क्या नही करती ? सब प्रेमी के गले मे बाहे डाल कर आजीवन कुवारा रहने की बाते करती हैं । फिर मै ही पापी कैसे हो जाऊंगा ?' प्यार तो मै पारो को करता हूं, लेकिन एक औरत तो मुझे चाहिए ही ।

घडी ने ठक एक बजाया । चाय का गिलास यो ही रहा । ढेरो मक्खिया मलाई को पर्त को चीर कर अन्दर जाने के लिए आपस मे लड रही थीं । शिव

भी अपने चारों ओर की दीवार···जीवन के संकुचित दायरे को तोड़ कर बाहर जाना चाहा था। उसे एक औरत चाहिए थी, लेकिन वह औरत कहाँ मिलेगी ? कोठों की दुनिया में ? नहीं, नहीं; वहाँ की औरतें गन्दी होती हैं। वह अपने निगम बाबू वहाँ जाया करते थे। पता नहीं एक दिन क्या लेकर लौटे कि वह अंग-अंग गल गया ··कुत्ते-मौत मरे थे। नहीं · की औरतें गन्दी होती हैं।

एक झुंझलाहट सी लिए वह बाहर बरामदे मे निकल आया··· फिर अच्छी औरतें कहाँ हैं ? अच्छे की पहचान ही क्या है?—ये तमाम पीले, मुर्दा चेहरे, ढले हुए जिस्म इसमें अच्छा है ही क्या ? सोचते-सोचते शिव को मोहन का ध्यान आया—मोहन बचपन का दोस्त, एकदम स्वतन्त्रता-प्रिय जिसने अपनी स्वतन्त्रता को किसी एक औरत के यहाँ गिरवी नही रखा। अक्सर कहता था—अरे मियाँ, आज की दुनिया में शादी करना तूफाने बत्तमीजी है, बहुत बड़ी जहालत···शादी करिये बच्चे पैदा कीजिये और सारी जिन्दगी को घुन लगा लीजिये—लानत है ऐसी जिन्दगी पर आज बीबी बीमार, कल बच्चे महीना अभी चढ़ने भी नहीं पाया कि फक्कड़ हो गए। और तब प्रत्युत्तर मे शिव कहा करता था—"नाली का गंदा पानी पाने वाला गंगा-जल क्या जाने ?"

लेकिन आज शिव को मोहन की दलील पसन्द आई। उसने मोहन से फोन पर बात की सब तै हुआ। एकाउन्टेन्ट को पारो की दवा का पर्चा दिखाकर ५०) रु० एडभास लिए और जीवन स्वर्ग की मधुर कल्पना में उड़ चला। एक हसीन औरत। मोहन के शब्दो मे 'क्रीम पफ'। धत् तेरे की, कहाँ क्रीम पफ' और कहाँ वह महरी, चने की सूखी रोटी ?

शिव को दिन इतना सख्त कभी नहीं मालूम हुआ ··जाने कितनी देर के संघर्ष के बाद नर्म शाम सख्त दिन को निगल सकी—शिव का अंग-अंग थिरक उठा।

शिव की आँखें कांपती बोतल और उस मे लडखडाते कदमो से गिलास मे उतरती शराब की धार पर लगी थी। अचानक द्वार पर पड़ा गहरा हरा पर्दा थरथराया और एक मधुर स्वर उस पार मे आया "मोहन साहब ! आ सकती हूँ ?" मोहन की आँखो मे एक कुटिल हँसी थी—"ओ स्योर डार्लिंग।"

एक जवान लड़की अन्दर आई। मोहन ने जाने क्या संकेत किया कि वह निःसंकोच शिव के पास बैठ गई—बिल्कुल पास सट कर। शिव के माथे पर पसीना छलछला आया, कुछ सिहरा तो लड़की की मदहोश आँखो ने उसकी आँखो में कुछ देखा। क्या शिव समझ न सका। उसने इतना ही सुना, मोहन कह रहा था—"टेक इट, ईजी मैने।" वह सम्हल गया।

और फिर एक घंटा भी नहीं बीता कि शिव और वह लड़की आपस में काफी धुल-मिल गए—दोनो आदमी गहरे मित्र और बीच में एक औरत····कुछ भी ढका दबा नहीं सब अपनी-अपनी स्थिति से पूर्ण भिज्ञ। शिव स्वयं को भूल

गया। जो वह कल से चाहता था वही हुआ। अब न पारो का बीमार जिस्म पास से था, न मेहरी की उपेक्षा, अवहेलना और न ही सुबह की कड़वी 'ठलक टी। बस वह था। और जवानी की जीती-जागती तस्वीर वह लड़की!

शिव ने माचिस निकालने के लिए जेब में हाथ डाला। अंदर हाथ को जैसे किसी ने पकड़ लिया। एक कागज का टुकड़ा। उसने दिमाग पर जोर डाला, क्या हो सकता है? नोट—नहीं, नहीं वह तो 'हिप पाकिट' में है। फिर क्या हो सकता है? मारो गोली! बाबू की जेब भी तो अच्छा खासा दफ्तर होती है। होगा कोई दफ्तर या घर के हिसाब का कागज। घर के हिसाब की याद आते ही अंदर ही अंदर किसी ने उसके हाथ को जोर से झकझोर दिया। उसका चेहरा जर्द पड़ गया। वह पारो की दवा का पर्चा था। बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा। पारो। पारो। उसने कहा था कि हो सके तो आज ही लेते आइएगा ''रात बड़ी तकलीफ रही।

ब्याय ने प्लेटें सजाकर रखी। मोहन ने शराब की खाली बोतल की ओर हिकारत भरी नजर डालते हुए दूसरी बोतल की डाट खोली। शिव ने पास बैठी लड़की का हाथ अपने हाथ मे लेकर आखें मूंद ली ''एक हफ्ता ही तो हुआ होगा। जब डाक्टर ने कहा था कि आप की मिसेज का हाज्मा ठीक नही है। हो सके तो उन्हें 'ग्रेप्टीन' बिस्कुट दीजिए हज्म भी आसानी से होंगे और इनसे कमजोरी भी दूर होगी। पाच रुपये चौदह आने के सौ बिस्कुट। इतने महगे। कहां से आएंगे? बात टल गई—हफ्ता बीत गया।

नशे में धुत्त मोहन ने मटन-चाप काटा अरे, क्या दार्शनिको की तरह सोच मे डूबा है? ले मैं ' मैं पहले ही कहता था जिन्दगी अपने आप मे ही एक बहुत बड़ी बोरियत है, उस पर शादी महा बोरियत। अहमक है जो शादी करते हैं जिन्दगी रगीली और, 'चेन्ज' चाहती हैं। शिव चुप रहा उसका हाथ जेब मे था और जहर बढ़ता जा रहा था। 'चेन्ज' पारो को भी 'चेन्ज' की आवश्यकता है कहते हैं बेलोर मे कैंसर के केस ठीक हो जाते हैं। होते ही होंगे, तभी तो इतना नाम है। लेकिन मैं मेरे पास इतना पैसा भला कहा है?

जाने किस बात पर मोहन और उस लड़की ने ठहाका लगाया। साथ देने के लिए देखा-देखी शिव भी हसा—खूब जोर से ताकि चढ़ते हुए जहर की तेजी, वह पीड़ा और वेदना जो नस-नस को मरोड़े डाल रही थी, उसे भूल जाये। भूल जाये कि वह पारो को बेलोर नहीं ले जा सकता, 'ग्रेप्टीन' बिस्कुट मंहगे हैं फिर भी अपनी दुर्बलता के पोषण के लिये पचास रुपये एडवांस ले सकता है।

शिव ने अपना हाथ पास बैठी लडकी की कमर में डालकर उसे अपने पास खींच लिया, 'मरती है, मरे। पारो को तो यो भी चार दिन बाद मरना ही है। मैं क्यो वक्त से पहले मरू ? अपनी सामर्थ्य भर जो हो पाता है करता ही हूँ। शिव को लगा जैसे दूर से लडकी मालूम होने वाली वह औरत है···पूरी औरत। उस औरत ने एक-दो बार फारमेलिटी के लिए ऊ ' आ'' की और फिर अपने शरीर का सारा भार शिव के कंधो पर डाल दिया। मोहन नशे मे धुत मेज पर सिर रखेपड़ा था ।

औरत शिव का हाथ अपने हाथ मे लेते हुये बोली–' जरा जल्दी छुट्टी दीजिए।'

शिव ने पूछा—"अभी कही और भी जाना है ?"

'औरत की आंखो में एक विवशता थी।

"मालूम होता है, धधा खूब चलता है ?"

'देखते नही' ' यह रूप,···यह यौवन किसे नही चाहिए ?"

"इतना पैसा क्या करती हो ' खाने के लिए इन्सान को रोटी चाहिए, सोना-चादी नही ।।"

औरत थोडी देर चुप रही, फिर "क्या करती हूँ, यह सवाल करने की आज तक किसी को भी फुरसत नही रही। सुनो, जो तुम देख रहे हो वह मेरी जिन्दगी का एक बहुत गंदा हिस्सा है लेकिन इसके अलावा भी मेरी जिन्दगी है, उतनी साफ सुथरी जितनी किसी भी शरीफ आदमी की हो सकती है। मैं एक पति की पत्नी हू, एक बच्चे की मा हूँ। वह एक लम्बी कहानी है जिसका कोई ओर छोर नही मेरे पति टी बी. सैनेटोरियम मे हैं। बस यही समझ लीजिए कि उनकी जिन्दगी मुझे अपनी नारी से भी अधिक प्यारी है, उन्हे बचाने के लिए मुझे ऐसे एक शरीर तो क्या एक हजार शरीरो की भी बलि देनी होगी तो नही' हटूँगी।"

एक क्षण को सब कुछ अपनी जगह जम-सा गया— चारो ओर 'वेकूअम'-सा या एक शून्य। शिव को लगा उस ओर पारो बोल रही है। उसका मस्तिष्क जाने कैसी दुर्गन्ध से भर गया, बदबू और सडाध मे उसका जी घुटने लगा। वह उठा, मोहन को झकझोर कर बोला "अभी आता हू।" फिर एक ही सास में वह सारी सीढ़ियाँ उतर कर भागा जाने किस ओर ··

जहर उतर रहा था। हवा मे ठडक थी।

पारो की आँखें तो दरवाजे पर ही थीं। शिव को देखते ही बोली–"इतना सब यह क्या ले आये ? अभी तो महीने मे दस दिन हैं।" शिव ने दवा की शीशी, इन्जेक्शन, 'अप्टीन' बिस्कुट का डिब्बा और कुछ किताबें पारो के सिरहाने रखते हुए उसका माथा चूम लिया ··"पारो तुझे ठीक होना पडेगा–नहीं' तो ये जहरीले नाग मुझे डस लेंगे।" पारो की आँखें भर आईं–अपनी शुष्क प्राणहीन पतली-पतली उँगलियाँ शिव के सूखे बालो मे फेरते हुए बोली–"चाय पी थी ?"

शिव का आत्मा हिल गई–अन्दर जाने क्या उमडा। वह आंसू रोक न सका, बोला–' नहीं पारो, नही पी ही न सका।" **

*

मंत्र-मुग्ध | शरद जोशी

जटाशंकरजी को यह बात कैसे सहन हो सकती थी भट्टजी का छोरा मदन हमेशा उनकी बेटी गीता के आस पास ही रहे। अब गीता कोई छोटी तो रही, नही घाघरा-पोलका पहनना उसशे छोड दिया है और साडी पहनती है। मदन सुबह से दातुन लेकर बैठेगा तो वही, नल के पासवाली मिश्राजी की सीढी पर, जहां गीता पानी भरती हो। फिर अपना पानी भरेगा तो रोज उससे झगडा करेगा और कभी पानी फेंकने लगेगा। फिर दुपहरी मे छज्जे पर उसके साथ ताश कूटता रहेगा। भट्टजी को यह सब नापसन्द था। मदन जैसा लबतडग छोकरा उनकी कुंवारी बेटी के पीछे पडा रहे तो आस-पडोस के लोगो के कैसे सुहा सकता है। सारी गुवाडी में दूसरे भी तो हैं, देखे, वहां मदन का मन नही लगता ? थोडे दिन हो तो सोचें कि भई बच्चा है, चढती उमर है, पर ये रोज-रोज होगा तो लोग नाम नहीं पाडेगें। कहनेवाले की जुबान नहीं रोकी जाती। जटाशकर जी कुछ बोल भी नही सकते क्योंकि मदन भट्टजी जैसे प्रतिष्ठित आदमी का लडका। और उनकी छोरी तो भोली नादान है, उसको आज कहो तो मान जाय पर कल फिर दोपहर को मदन आकर कहे—गीत ताश खेलें तो झट राजी। और जरा सी तो है, उसको समझ क्या। गीता वर जान मे भे ढूढ रही हैं, भगवान शंकर कुछ न कुछ व्यवस्था कर ही देगे। आज गीता की मा होती ····

गर्मी खतम हुई कि मदन उदयपुर ट्रेनिंग पर चला गया। जटाशंकर जी ने सोचा चलो साल भर की बेफिकरी रही, जब तक तो छोरी क्या है, जी पराया धन है, छुटपन से अपने तो पालने-पोसने वाले हैं, और जिसके भाग में इसका हाथ लिखा है उसको सम्हला देगें, कि ले भई तू जान, सोने-कचन सी रखे तो तेरी है और धूले मिट्टी-सी रखे तो तेरी है। हम तो बाग के माली हैं। आज गीता की मां होती। .. . ..

अब यह बात अलग है कि जटाशंकरजी को यह खबर नही थी कि उनकी बच्ची गीता और मदन फुसर-फुसर जाने क्या बाते किया करते हैं। कभी-कभी छुप-छुप कर मिलना, अच्छा ही हुआ गुवाडी में किसी ने देखा नहीं।

इधर उतरते आषाढ गीता की सगाई हो गई। रतलाम निवासी विनायक जी चौबे के चिरंजीव के साथ। लड़का अच्छा है, दुजबर है। घर में सास नहीं है। पहली वाली एक साल मे ही मर गई थी।

जटाशंकर जी को अब ब्याह की चिन्ता थी। दुजबर लड़का ज्यादा दिन थोड़े ही ठहरेगा। दो-एक महीने मे लगन लगवा दिये। सारी गुवाडी में धूम थी गीता तो सब चुपचाप थोडी विचार करते, थोड़ी हसते, थोडी रोते सारी ब्याह रात मे बैठी रही। सारी जाति जमा थी भट्टजी अपना काम समझ कर हाथ बटा रहे थे। जटाशंकरजी बार-बार कहते—आज मदन होता पट्ठा तो बड़ा आनन्द रहता। उसकी बहन का ब्याह हो रहा है और वह नहीं। बडी याद आ रही है।

भट्ट जी मुस्करा देते।

गीता को भी याद आ रही थी उसकी। पर क्या करे। अब नही हैं होता तो देखता कि मै इन कपडो मे कैसी लग रही हूँ।

गीता चली गई। सौभाग्यवती हो! सात पूत की मा हो! अपने ससुर को प्रसन्न रखना, अब जरा चंचलता कम करना बेटी! पराया घर है।

इस जेठ मे गीता रतलाम से आई तो मदन यही था। पर अब जटाशंकर जी को चिन्ता की कोई बात नही थी। जब से गीता चली गई है और वे अकेले रह गये, सांसारिक चिन्ता से हटकर वे पूजा-पाठ मे लीन रहने लगे। सुबह पाँच बजे जब साडी गुवाडी मे सिवाय तुलसो-माँ के और कोई नही उठता, तब वे उठ जाते। नल के नोचे नहाते और एक पजा पहन पूजा पर बैठ जाते। पूजा के बाद माला प्रारम्भ करते और जब तक उनकी आँखें मूंदी रहती, उनके मुह से अस्फुट सी ध्वनियाँ निकला करती जैसे—'क्लीं' ॐ फट' आदि और माला मनके उनकी बेजान-सी उंगलियो के बीच होकर सरकती जाती। यह सिलसिला चलता रहता जबतक कि अगरबत्ती भी राख न हो जाती, सूरज की किरणें देहरी के पास तक नही आ जाती और बहुत आगे के कमरे से घड़ी ग्यारह टनकारे नही कर देती

आजकल जटाशंकरजी देवी के मंत्रो का पाठ करने मे लगे हैं। नियम है कि आसन से जरा भी नही हिलना चाहिए, जब तक कि निश्चित मालायें पूरी न हो जायें।

उस दिन गीता जाने वाली थी दस की गाडी से; पर जटाशंकरजी मजबूर थे। वे तो रोज के नेम से नहाकर सुबह से पूजा मे बैठ गये। थोडी ही देर मे पूजा की वह छोटी सी कोठरी अगरबत्ती व लोहबान से महकने लगी।

एक कोने मे दीया टिमटिमाने लगा और मंत्रो की अस्फुट ध्वनि आने लगी।

सुबह आठ साढे आठ बजा होगा और मदन आया। जटाशंकरजी को मंत्र पढते ही पढते आवाज से पता चल गया कि मदन है। वह उनके पास मे निकला और साधा छज्जे पर चला गया, जो पूजा घर से आगे था। मदन ने आवाज दी—'गीता।' वह नहा के बाहर आई कपडे पहन रही थी। उसे जान शीघ्र सभल गई। कपडे ठीक कर बोली—'आओ।'

'आज जा रही हो?' मदन ने दुखी स्वरो से कहा।

'हाँ—बाल का पानी निचोडते गीता ने उत्तर दिया।

मदन उसे देखता रहा। फिर उसने जेब से एक बारीक लाल कागज निकाल कर खोला जिसमे सोने की दो चूडिया थीं। गीता की आंखे चमकी हल्के मुस्कुरा कर उसके चेहरे के पास आई और फिर गभीर होकर बोली, 'यह क्यो लाये?'

'तेरे लिये'।

गीता कनखी मे मदन की ओर देख मुस्करा उठी और बोली, 'क्यो खर्च किया?'

'जिन्दगी भर खर्च करते रहने का मौका कहाँ दिया तैने। चली गई दूसरे के साथ।, मदन ने रटा-सा उत्तर दिया।

गीता चुप हो गई।

'पास आ'—मदन बोला।

'नही, मैं पहन लूंगी।'

'मैं पहनाऊंगा।'

'नहा।' उसने उठकर गीता का हाथ खींचा। वह छुडाने लगी, क्या करते हो।'

जटाशकरजी ने सुना, पर वे बराबर अपना मत्र पढते गये। यह देवी का मत्र था और अब उसके पूर्ण होने के कुछ ही दिन शेष थे। उन्हे रात्रि को स्वप्न मे देवी सकेत देने लग गई थी, एक बार जटाशकरजी के स्वप्न में उनकी स्वर्गीय पत्नी का वेश लेकर आई भी थी। और उन्हे एक सफेद फूल दे गयी थी। और उनके कान सुन रहे थे कि खीचातानी सी दोनो के बीच पास के कमरे में चल रही है। फिर आवाज आई,

'अच्छा पहना दो।'

एक मिनट को शान्ति रही।

"मैं सिर्फ चूड़ी पहनाने तो नही आया।"

'हट।'

'नहीं।'

'छोड़ो! मैं दायजी से कह दूंगी।'

'चुप'।

जटाशंकरजी का ध्यान मंत्र से हटने लगा पर फिर उन्होने सोचा यह देवी की परीक्षा है और सामने टंगे दुर्गा के चित्र की ओर नजर गड़ा ली और तेजी से मंत्र पढ़ने लगे। फिर वही ध्वनि 'ओम् क्लिं श्री फटफट और शेर पर बैठी देवी भाला हाथ मे ले जटाशंकरजी की ओर मुस्कुराती रहीं। जटाशंकरजी पास के कमरे में क्या हो रहा है, समझ रहे थे और उन्हे विश्वास था कि जरूर कोई चमत्कार होगा, जरूर उनकी बेटी में दुर्गा माँ की शक्ति समा जायेगी।

पर कोई चमत्कार नहीं हुआ। कुछ देर बाद हंसी की-सी ध्वनि आई और जटाशंकरजी मंत्र पढ़ते रहे। बाद मे मौन शान्ति छा गई। सहयोग और समर्पण वाली शान्ति।

देवी मुस्कराती रही और अपनी पहली और अन्तिम देवी द्वारा ली गई परीक्षा मे जटाशंकरजी सफल रहे और बराबर मंत्र पढ़ते रहे जब कि देवी बराबर मुस्कराती रही।

कुछ देर बाद मदन तेजी से चला गया। गीता के कमरे मे कोई हलचल नही रही। अगरबत्ती बुझ गई और बाद मे गीता के ट्रंक बन्द करने की आवाज आई। पड़ोसी के छोकरे से तांगा मंगाया गया। विचित्र-सा डरा हुआ चेहरा लिये हुए, आंख में आंसू भरे कांपते हाथो से गीता ने मंत्र बोलते बाप के पैर पड़े और कहा, 'जाऊं?'

जटाशंकरजी ने देखा, उसके हाथ मे सोने की चूड़ियां हैं जो न तो वह ससुराल से लाई थी और न उसे पीहर से दी गई थी।

उन्होने गर्दन झुका आशीर्वाद दे दिया और फिर मंत्र पढ़ने लगे—श्री ओम् क्लिं फटफट।

**

एक पहेली

—राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित'

लाला जगतनारायण मेरे पड़ोसी हैं और वे अक्सर अपनी पत्नी का ही रोना रोते रहते हैं। अपनी खल्वाट खोपड़ी से काली टोपी ऊपर उठाकर अपनी हथेलियो मे उछालते उन्हे चाहे जब देखा जा सकता है। जब कुछ फुरसत मिलती है तो वे औरतो का पुराण ही बखानते हैं और सब कुछ कहने के बाद उनका एक ही निष्कर्ष होता है, वह यह कि औरत एक पहेली है।

एक दिन का जिक्र है, उस दिन शायद किसी नेता के मर जाने से सारे शहर में हड़ताल थी। काफी दिनो के बाद लाला जी को ऐसी फुरसत का समय मिला था। जब वे मेरे घर के पास से निकले और दरवाजा खुला देखा तो उन्होने साँकल खट खटायी और उसके साथ बेधड़क भीतर घुसकर ड्राइंग रूम की एक कुर्सी पर बैठ गये। यहाँ-वहाँ की चर्चा हुई। नेता की मौत पर कुछ मातमपुरसी भी की गयी, पर आखिर मुल्ला साहब कहीं रहे, याद मसजिद की बनी रहती है। लालाजी वही नारी पुराण पर आन टूटे। बोले—'भाई, ब्याह क्या किया हैं, बला मोल ले ली है।'

मैंने कहा—'लालाजी, आखिर आप क्यो सिर देकर इन रमणियो के पीछे पड़े हैं।

वे बोले—'कुछ न पूछो यार।' और सामने के स्टूल पर अपना लम्बा पैर फैलाते हुए उन्होने कहा— इसलिये की औरत एक पहेली है।'

उनका यह तकियाकलाम मैं एक अर्से से सुन रहा हू इसलिये मुझे सुनकर अचरज नहीं हुआ। पर हाँ, एक बात साफ हो गयी कि आज लालाजी यहाँ खूब जमेगे और कुछ नयी चीज जरूर कहेगे तभी यह कम्बख्त तकियाकलाम इस गहराई के साथ उतारा गया है। मैंने भी सोचा—आज भिड़न्त हो ही जाय, सो प्रतिवाद कर बैठा—'गलत कहते हैं आप लालाजी। औरत पहेली नहीं हो सकती।'

उनकी आँखें चढ़ गयी। अपनी दाँयी हथेली को खोपड़ी पर रेसकोर्स के घोड़े की तरह सरपट दौड़ाते हुए बोले—'बच्चे हो अभी, बच्चे।'

'इसमे क्या ताज्जुब है लालाजी।,—मैंने कहा—'कहाँ आप ४५ बरस के बूढ़े और ।'

'बूढ़ा'—सुनकर उन्होने दात निपोर दिये, बोले— देखते नही 'मियाँ, सारे बाल काले हैं। पूरी एक दर्जन रोटियाँ खाता हूँ और दो-दो बीबियाँ पाल रखी है, पर खैर छोड़ो भी'—बात टालते हुए बोले—'आज तो मैं तुम्हे यह समझाना चाहता हू कि औरत कितनी बेढब पहेली है। भाई बुरा न मानना, बात मैं अपनी ही करता हूँ।'

मैं समझ गया था कि अब यह पुराण घन्टो चलेगा। मैने नौकर को आवाज देकर दो कप बढ़िया काफी बनाने का हुक्म दिया तो लालाजी ने अपनी लीक से जरा डिग होते हुए कहा—'हां भाई, और जरा शक्कर ज्यादा डालना।'

नौकर सिर हिलाकर चला गया और लालाजी का तूफानी तीर 'फैन' की

सनसनाती हवा को चीरता चलता रहा। बोले—'तुम नही' जानते, मेरी दो बीबियां हैं। पहली तब आयी थी जब सतरह बरस का था। उसके आंचल मे दस बरस बाखूबी बीते, यानी तब मैं सताईस का हो गया, पर भगवान भी क्या गजब ढाता है, ललाइन की गोद खाली ही रही। घर की बात को छोड़िये—मा-बाप से लेकर साले-साली, सास-ससुर तो पीछे पडे ही थे—दोस्त-मित्र भी कहने लगे कि मैं पूरा मरद नही', हूं वरना दस बरस शादी को हो जांय और घर मे किलकारी न गूंजे, हर्गिज नही' हो सकता। मेरे एक साथी तो तब तक पूरे पांच बच्चो के बाप बन चुके थे और उनकी घर-वाली भी अक्सर हमारी 'उनसे' छेड़खानी करती रहती रहती थी। गोया एक तरफ मैं परेशान था तो दूसरी तरफ वो। आखिर एक प्रोजल यानी प्रस्ताव आया कि मैं दूसरा ब्याह कर लूं।

'दूसरा ब्याह कर लूं अजीब बात थी न?' गिर-गिट की तरह गर्दन मटका कर और बीच की अगुली मेरी ओर तीर की तरह दिखा कर जब लालाजी ने प्रश्न किया तो मैंने सिर हिलाकर हामी भर दी। मैंने तय कर लिया था कि मै उनसे तब तक नही बोलूंगा, जब तक वे सत्यनारायण की कथा के सातो अध्याय न कह डाले। उनका बयान जारी था—'तो भाई, जब सोते, बैठते, उठते दूसरी शादी का भूत पीछे लगा तो पत्नी ने एक दिन अपनी स्वीकृति दे दी, वह भी मुझसे नहा, अपनी सास को। फिर क्या था, शहनाई बजी, पालकी सजी मिठाई-बटाये बंटे और एक दूसरी सुन्दरी मेरे गले बांध दी गयी, वही मुन्ने की मा, तुम तो जानते हो उसे न?'

'जी हा, छोटी चाची को भला कौन नही जानता!'—मैंने कहा।

'अजी, उसी चाची के ब्याह का वाकया तो सुना रहा हूं। शादी तो हो गयी, पर सुहाग-रात का दिन आया तो मेरी पहली पत्नी ने सारा घर सिर पर उठा लिया। यहां-वहां आग बरसने लगी। ब्याह में वैसे ही घर मे भीड़ लग जाती है, अब पूरे पड़ोस की भीड़ जमा हो गयी। रोने गाने से लेकर सिर पटकना तक चला। इतना ही नही', आठ बजे के करीब नदी मे डूबने के लिये भी उन्होने प्रस्थान कर दिया।

जैसे खेत का बाँध फूट गया। आँसुओं की धारा से उन की साड़ी और मेरे हाथ तरबतर हो गये। उन्हों ने भी खूब सिर पीटा और अपनी तकदीर को खूब

'किस मुसीबत में उन्हें डूबने से बचा पाया, यह तो मत पूछो भाई। पर हाँ, हमने उस दिन सुहाग रात नहीं मनायी और जब सब सो गये तो बाहर सीता-फल के झाड़ के नीचे अपना बिस्तर तान दिया। मुर्गे के बांग के पहले उठ भी गया ताकि कोई यह बात कानों कान न जाने, पर वह भी छिप सकती है ?

'यहाँ दूसरी श्रीमतीजी, यानी वही मुन्ने की माँ भी रोने लगीं। मुझसे शादी क्यों की थी, मेरी तो तकदीर बिगड़ गयी। मैं अभी दद्दा को तार देती हूँ—गोया दोनों ने एक साथ आगे-पीछे से हमला शुरू कर दिया, पर मैंने भी कितनी बुद्धिमानी से काम लिया, आप ही बताइये ?

उनकी बुद्धिमानी सुने बिना ही मैंने कह दिया—'हाँ, लालाजी, बहुत बुद्धिमानी से।'

तत्काल उन्होंने कुर्सी से उठ कर मेरी पीठ ठोकी, बोले—'आखिर भतीजे लाला के हो।' मूँछ पर हाथ फेरते हुए बोले—'अपने राम लार्ड लुटंस्टन के नाबेल के हीरो की तरह सारे तीर आँख बन्द करके खाते गये। ठीक पाँच दिन बाद इस हमले का अंत हुआ। उस दिन रात को दस बजे मेरी पहली पत्नी उसी सीता फल के झाड़ के नीचे आ धमकी, बोली—'कैसे मरद हो उस बेचारी को ब्याह कर लाये हो, पाँच दिन हो गये, पास तक नहीं गये। क्या कहती होगी वह। तुम्हारा दिमाग तो नहीं फिर गया ? जब मेरी शादी हुई थी तब भी तुम दो दिन नदारत थे। कहते थे, सेठ की लड़की की शादी है। जाने क्यों ये मनहूस मरद औरतों की जिन्दगी बिगाड़ने के लिये शादी करते हैं।

'मैं जैसे आसमान से पत्थर पर नीचे पटक दिया गया था और नीचे की जमीन अपने आप सरक रही थी। लगता था बैल गाड़ी के चक्के की कील पर मैं बैठा हूँ और सब कुछ घूम रहा है ठीक इसी फेन की तरह। श्रीमती जी ने जो कुछ मनमें आया, उल्टा सीधा कहा और फिर जबरन मेरा हाथ पकड़ कर उस के कमरे तक ले गयी और अन्दर ढकेल कर बाहर से दरवाजा भी लगा दिया तब मैंने देखा कि पाँच दिन पहले के सूखे फूल वहाँ नहीं थे और सारी सेज ताजे और खुशबूदार फूलों से सजी थी। पर मेरी यह नयी पत्नी एक कोने में सिर लटकाये दीवार से सटी बैठी थी। मैंने हाथ पकड़ कर उन्हें उठाया तो

धिक्कारा। मैं बराबर समझता रहा, पर वे तो कमरे से भागने के लिये तैयार हो गयीं। खैरियत थी कि दरवाजा बाहर से बन्द था, वरना मुझे ही उस सेज पर बैठकर रातभर आंसू बहाना पड़ता। आखिर काफी देर की मनौती के बाद रात सही सलामत कट गयी। सोचता था, सुबह सूरज की किरणों फिर एकाध नया एटम लेकर आयेगी, पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही था, जब दोपहर को रसोई घर मे गया तो दोनो बड़ी घुलमिल कर बाते कर रही थीं और मुझ पर दोनो ने इतने व्यंग कसे कि आधा पेट भी मुशकिल से उस दिन खा सका था। जो कुछ रिश्तेदार रह गये थे (बहुत से तो यह झगड़ा देख कर ही चम्पत हो चुके थे), मेरी ओर अचरज से देखते थे, गोया यह सब ढोंग रचने वाला यही अभागा लाला है।

'तो भाई, दिन गुजरे—कभी हंसी-खुशी रही और कभी कभी रोना-पीटना। एक दिन एक बिगड़ती तो दूसरे दिन दूसरी। उन दोनो के बीच त्रिशंकु की तरह मैं लटक रहा था। ये कब रो दे और कब हंस दे इसका कोई ठिकाना नहीं। जरा-सा एक दिन कह दिया कि लाडली (बड़ी पत्नी), तेरी बिन्दिया क्या है, चांद चुरा लायी है, तो दुलारी (छोटी पत्नी) ने दीवार से सिर पीट लिया। दो दिन बात चीत बन्द, खाना-पीना हराम। एक दिन दुलारी चढ़ाववाली साड़ी पहने थी। देखा तो मुझे लगा, कोई परी खड़ी है। कमबख्त बेलगाम जबान ने कह दिया—'जाने कितनो को कतल करती है। अप्सरा !, अप्सरा तो फूलकर फुटबाल हो गयी पर उधर बीबिजी का मिज़ाज दूध की तरह उफन पड़ा।''

तब तक काफी आ चुकी थी। लालाजी ने आगे बढ़कर कप थामा और बैठक बदल कर चुस्की लेते हुए बोले—'भतीजे, अब तक यही क्रम है। जरा सी बात पर कब क्या हो जाय, मैं खुद नहीं जानता। फूंक-फूक कर पांव रखने पर भी कोई न कोई घायल हो जाता है। 'तुम्ही बताओ, औरत पहेली नही तो क्या है ?' लालाजी का बयान जैसे खतम हो गया था। वे प्रश्नभरी मुद्रा मे मेरी ओर देख रहे थे। मैंने सोचा—आज इतनी जल्दी 'सरेण्डर' होने में भला नहीं. बोला—लालाजी, एक बात कहूँ ?'

बोले—'एक क्या दो कहो।'

मैंने पूछा—'बुरा तो नही मानोगे ?,

वे बोले 'पगले, भला बुरा क्यों मानूंगा ?'

—०—

मैंने कहा—'दरअसल लालाजी, औरतो के विषय मे अपना ख्याल थोडा अलग है ? आप कहा तक सहमत होते हैं, नही जानता पर मेरा दृढ मत है कि औरत पहेली कदापि नही।' लालाजी अचरज मे थे, यह उनकी बडी बडी आखो और उठी हुई बरौनियो से साफ जाहिर था। बोले, 'सो कैसे भतीजे।'

मैंने कहा—'इसलिए लालाजी, की हर पहेली का कोई हल होता है। जिसका हल न हो वह पहेली नही। अभी जो बयान आपने दिये उनसे साफ जाहिर है कि जो सिलसिला ब्याह के समय आपके यहाँ चला था, अभी तक चालू है।'

उन्होने सहमति दी।

मैंने तब विजयगर्व से कहा—'मतलब यह है कि औरत तब पहेली नही रही।'

'तो क्या रही ? क्या अजीब बात करते हो जी।,—लाला जी बोले।

मैंने कहा 'ठहरिए लाला जी। आप ने तो दो औरतो की बात लेकर पहेला खडी की है। अशिष्टता न माने तो कहूँ तुम्हारा भतीजा तो एक ही औरत से परेशान है। कब क्या डिमाड रख दे, कब क्या कह जाय, कब सिर पीट ले, कब अपने माँ-बाप को कोसे, कब मेरे पूज्य पिता जी पर वाग्वाणो की वर्षा करे, कब रोने लगे, कब हंस दे, कब बूँदी के लड्डू खिला दे—मैं आज तक पता नही पाया।'

'जरा सी बात पर एक सप्ताह पहले तक सेर हो गये फिर क्या था। थानेदार की बेटी जो ठहरी। अपना बोरिया-बिस्तर बांधकर अकेले ही मायके चली गयी और लालाजी, फिर बडा मजा आया—'मैं खूब हंसा, इतने कि मेरा पेट फूलने लगा और लालाजी आंखे फाडे हक्का-बक्का मुझे देखते रहे, बोले—'तुम्हे क्या हो गया भाई ?.

मैंने उठकर डेस्क से एक कागज निकाला, बोला—'मजा आ गया लालाजी, आज ही तार आया है—'यहाँ अच्छा नही लगत', लेने चले आइये, कसूर किया सो माफ करना।' देखा आपने—'मैंने कहा—'और जब लेने पहुचूँगा तो शेरनी की तरह गरजेगी। अब तो आप मानेगे न, कि पहेली न तो आजतक आप की हल हुई और न मेरी, और भरोसा रखिये, वह कभी नही होगी, क्योकि औरत एक पहेली नही है, वह है काटा।'

लालाजी ने टेबुल पर रखा पान का बीडा मुह मे ठूस लिया, बोले—'अजीब आदमी हो जी—।'

मैंने कहा—'हां लालाजी,, कांटे जरिया मे होते हैं, करौंदे में होते हैं, गुलाब मे होते है, घास में होते हैं, नागफनी मे होते हैं, पर औरत यह सब नहीं हैं, वह है बबूल का कांटा-अंगुली से भी बडा सफेद-सफेद जो एक बार जख्म कर दे तो जिन्दगी भर क लिये निशानी छोड जाय।'

लालाजी उठ कर खडे हो गये, शायद अपनी पराजय पर खीझ रहे थे। मैंने कहा—'बैठिए भी लालाजी, जल्दी क्या है? आप मान तो लीजिये कि औरत बबूल का कांटा है। वह न हो तो दुनिया इतने आराम से चले कि कुछ न पूछो। उसे रास्ते मे हटा दो दुनिया का सारा सुख कदम चूमेगा। द्रौपदी ने महाभारत कराया, सीता ने रामायण लिखायी और, और लालाजी, कल हो एक नोबेल पढ रहा था दि 'ब्लैक एरो' जोना सेडलेके पीछे ही सर डेनियल ने इंग्लैंड का राज खोया और सर रिचोर्ड शेल्टन ने घडो खून बहाया।' मैंने आंख उठाकर देखा तो लालाजी जा चुके थे और मेरा नौकर दूसरा एक्सप्रेस तार लिये सामने खडा था। खोलकर पढा, वह श्रीमती जी का था, वह अकेले ही हावडा मेल म तशरीफ ला रही थी।

***

भ्रम-जाल । यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

'मां ।' मैं श्रद्धा से विह्वल होकर बोला।

'मां !' एक हल्की रोषभरी चीख के साथ उसकी भृकुटियां तन गईं। आंखें अपनी स्वाभाविक आर्द्रता छोडकर लाल हो उठीं। वह तनिक कठोर स्वरमे बोली, 'तुम मुझे मां क्यो कहते हो ? जानते नही', मैं अब भी जवान हूँ। मेरी उमगें अब भी सागरकी उत्ताल तरंगोकी तरह चञ्चल हैं। मेरे दिलका प्यार अब भी जिन्दा है। मेरे अन्तरका माधुर्य स्वयं बाह्य सौन्दर्य सूरजके प्रकाशकी तरह अमर है। हर हरकत जिन्दा है और तुम मुझे मां कहते हो ?, उसने एक लम्बी सांस ली और वह शान्त स्वरमे रुक-रुककर बोली 'आज' तक मुझे सच्चे प्यारसे पुकारने-वाला नही मिला। कितना प्यारा नाम है मेरा ? जरा गौर तो करो, 'तारो।' ऐसा मालूम होता है कि किसी कविकी मधुर कल्पनाकी सजीव उपज। तुम भी पुकारकर देखो तो सही। सच कहती हू कि तारोके उच्चरणके साथ-साथ हृदय प्यारसे भर जायगा।'

मैं गहरी आत्मीयतासे बोला, 'सचमुच तुम्हारा नाम बहुत ही कवित्वपूर्ण है। भविष्यमे मैं तुम्हे ऐसा कहकर ही पुकारूंगा।'

वह प्रसन्नताके मारे किलक उठी, 'वर्षोके बाद एक मुझे कद्रदान मिला है।' इतना कहकर वह भावुकतामे डूब गई। उसके नेत्र मुद गये और मै उसके चेहरेके बदलते भावोको देख रहा था—एकटक।

शहरसे दूर। सुनसान खंडहर। टूटे कलात्मक पत्थर जैसे किसी मिटते सामन्त की हवेली। हवेली ऐसी जैसी शृङ्गारहीन सुन्दरी विधवा। पांवहीन बलिष्ठ मनुष्यकी तरह निरुपाय।

इस खडहरमे रहती है तारो। लोग उसे पगली कहते है, मैं भी पगली मानकर चला था। पहले दिन उसने मुझे अपने बारेमे इतना ही बताया। बादमे मुझे मालूम हुआ कि उसके जीवन-निर्वाह का साधन एक भिखारी है जो इसी खंडहर मे रहता है और वह भी उसकी आज्ञा से। वह भीख मांगकर लाता है और तारो रोटी बनाकर खा लेती है।

दिन बीतते गए। उसके सम्पर्क मे आनेके बाद मुझे महसूस हुआ कि तारो वास्तवमे पागल नही है बल्कि उसके अन्तरमे अपरिसीम व्यथा है जो यदा-कदा भडककर उसे विक्षुब्ध व विक्षिप्त बना देती हैं। मैंने उसके दु.खको

समझा, पीडाको पहचाना और अन्तमे इस निर्णयपर पहुँचा कि इस संसार का हर प्राणी अच्छा होते हुए भी पागल है। यह पागलपन ही उसकी असीमित बाधाओंका सहारा है। उस दिन मैं कुछ देर तक मौन, गम्भीर बैठा रहा। वह हठात् बोली, 'देखो रमेश, महाराज मानसिंहके बाद तुम्हीं मुझे एक ऐसे व्यक्ति मिले, जिसे मैं तनिक स्नेह कर सकती हूं। तुम कद्रदान हो संगीत के प्रेमी हो, उसके मर्मको को समझनेवाले हो।' उसने अपने मुंडन किये हुए सिरपर हाथ फेरकर कहा', 'अतीत मुझे बहुत प्यारा लगता है, कई साल पहले मै महाराजा मानसिंह के महल मे रहती थी। महाराजा मेरे कंठस्वर पर मुग्ध थे। मैं गाती तो वे विभोर हो जाते थे। दुख-रागमे आंसू और सुख-रागमे मुस्कान उनके अधरो पर नाच जाती थी। कभी-कभी वे स्वप्नविष्ट होकर कह भी उठते थे, गाओ, और गाओ तारा, तुम्हारा दर्द अनुभूतिपूर्ण है। मै गाती रहती, वे कहते रहते। वे कहते रहते और मै गाता रहती, तब जीवन स्वय गाने लगता। संगीतकी समाप्ति पर महाराजा अत्यन्त कोमल स्वरमे यह अवश्य पूछा करते थे, 'तरो! तुम जरूर किसी से प्रेम करती हो? वह खुशनसीब कौन है तारो?'

रमेश, वे इतने अपनत्वसे कहते थे कि मै गद्गद् हो जाती थी, मैं सुखद कल्पनाके पख पर सुदूर आकाशके आगनमे उडा करती थी। प्यारकी यह पुलक मेरे रोम-रोम मे उन्माद भर देती थी। प्रेम प्रेम . प्रेम।" ..तारो ने भावातिरेक होकर नेत्र मूंद लिये। उसके पुण्डरीक आनन पर उसकी आत्मा की पावनता के सहस्र सूरज चमक उठे। मै श्रद्धाभिभूत हो गया। वह चिर वियोगिन मीरा की तरह आत्म-विभार होकर बोली 'मै किसी से प्रेम जरूर करती थी रमेश?' प्यारकी मकरद मेरे अग-प्रत्यगमे बस गई थी पर मै जानता थीं कि मेरा आराध्य अप्राप्य है। अत मैंने अपने प्रेमीको परमेश्वरमें स्थापित कर लिया। मेरे तनका सौंदर्य और मनका माधुर्य सभी कुछ अपने उस अप्राप्य प्रभुको मन ही मन समर्पण हो चुका था।,

इतना कह कर तारो उठी।

आकाश धूमिल था। साध्य तारा पूर्व की ओर उदय हो चुका था। पवन शांत और निस्तब्ध था जैसे कुछ देर बाद निरभ्र नभमे घटाएं उठेंगी, बिजलियाँ चमकेगी और बादल बरस पडेंगे। मैं प्रकृतिके वैचित्र्यमे निमग्न हो गया कि तारो ने आकर मेरा ध्यान भंग किया। उसके हाथ में एक इकतारा था। वह इकतारे के तार को झंकृत करती हुई मधुर गंभीर स्वर मे बोली, 'प्रेम पराकाष्ठा पर पहुँच कर जब भक्ति का रूप धारण करता है, तब भक्त वियोग की ज्वाला में जल कर इस इकतारे का सहारा ले लेता है।

तब उसका दर्द गीत बन जाता हैं, अधरों की मुस्कान आँसुओं से भीग जाती हैं, उस के हर शब्द मे सात्विकता के दर्शन होने लगते हैं। वह अजेय बन जाता है। मैं भी अजेय बन गई हू। पराजय के विकट पथ पर मेरे चरण निरन्तर उठ सकते हैं। मैं प्रीत मे अपराजित हो गई हूँ। मैंने देखा तारो के मुख पर एक अलौकिक आभा दीप्त हो उठी है।

'फिर तू इतनी निराश क्यो हो? तुम्हारा आराध्य तो अमर है। ईश्वर है, फिर यह व्यथा का पागलपन कैसा? यह एकात क्यो? जब तुम यह जानती हो कि इसी अकेलेपन के कारण लोग मुझे पागल कहते हैं, फिर तुम अपने असली रूप मे क्यो नही आ जाती। मैं समझता हूँ कि इस दुनिया के बीच आकर तुम अपने निजी दुख को भूलकर समाज और देश को सगीत सुना कर एक नया आनंद पाओगी। समाज और राष्ट्र का कल्याण करोगी।'

मेरे इस प्रश्न पर वह तनिक गंभीर हो गई। आकाश मे तारो के फैलते हुए जाल पर नजर फेक कर वह बोली, 'यह संगीत की साधना, मिलन की यह उत्कठा उर्मी के लिए ही तो है। यह बिन्दी, उस ने अपने ललाट की ओर सकेत किया, क्या मेरे चिर सुहाग की प्रतीक नही? देखो रमेश, अब मै अपने आपसे, इस इकतारे मे और इस चट्टान के अलावा किसी से प्यार का व्यापार नही करती। फिर न मालूम जीवन की कौनसी अतृप्ति मुझे परेशान करती रहती है, मैं नही जानती।, वह वहाँ से उठी और उस चट्टान पर बैठती हुई कहने लगी, 'यह हम दोनो अर्थात् मै और महाराजा मानसिह बैठ कर मधुर स्वप्न दखा करते थे। वे दिन और थे। वे दिन और राते। महाराज मुझे अपने आलिगन मे आबद्ध किये, प्राय यही पूछा करते थे, तारो, तुम लाख छुपाने का प्रयत्न करो लेकिन यह सत्य है कि तुम किसी से प्रेम जरूर करती हो। मै तुम्हे वचन देता हूँ कि तुम्हारे प्रेमी को बाध्य करूंगा कि वह तुम्हे अपनाये। मै मुक्त हो कर बडी नम्रता से बोलती—वह अप्राप्य है महाराज, मीरा के गिरधर गोपाल की तरह वह भावना के संसार मे जरूर बस सकता है पर उस का पार्थिव शरीर इतना बन्धनहीन, इतना प्रभुता सम्पन्न, इतना अभिमानी है कि मैं उसे प्राप्त करने की केवल कल्पना ही कर सकती हूँ। हाँ, यदि वह बन्धनहीन नही होता तो मै समझती हूँ कि वह अटूट बन्धन को तोड कर आंचल में लोप हो जाता।'

'रमेश, महाराज मेरे उत्तर से और उलझ गए। कुछ बोले नही। केवल मेरी आंखो की आर्द्रता को निहारते रहे। एका-एक वे बोले, अब समझा वह जरूर मेरे राज्य का कोई अधिकारी होगा। खैर मै तुम्हे नाम बताने के लिए विवश नही करूंगा, लेकिन मेरे चित्त की यह मौन स्थिर भी नही रहने देगा।' वे मेरा कोमल हाथ अपने हाथ मे लेकर स्नेहसिक्त स्वर मे बोले, 'वह कितना भाग्यशाली और महान् है जिस ने तुम्हारे संगीत को प्राण दिए, महाराज की गहरी नीली आखो मे व्यथा चमक उठी।

मैं अभी तक चुप बैठा रहा। अब मुझ से चुप नही रहा गया। बोल ही पडा, 'तारो, तुम ने यह क्यो नहीं बताया कि तुम्हारा प्रेमी कौन था? वे महाराज थे सब सुलभ कर सकते थे।'

इस बार तारो का स्वर संतप्त हो उठा, पापी मनुष्य दर्पण मे जब अपने चेहरे को देखता है तब उस के सुन्दर चेहरे पर उस के आत्मा का कलंक चमक उठता है। वह ग्लानि और दर्द से उन्मत्त हो जाता है। ठीक उसी प्रकार मै भी अपनी हैसियत को देख कर कदम उठाती थी। थी तो आखिर नर्तकी ही इस लिए मैन अपने प्यार क सागर को दर्द का घूट समझ कर पी लिया।'

मैं शंकातुर हो कर एक प्रश्न पूछ बैठा, 'तुम बहुत पढी लिखी हो?'

'नहीं', पर अनुभव अधिक है। गायिका हूं न, राजा के अन्त पुर की गायिका।' स्वर व्यंगपूर्ण था।

मै चुप हो गया।

वह कहती गई जिस कहानी में घटनाएं न हो, वह बडी नीरस होती है और जिस जीवन मे उतार-चढाव, संघर्ष और तूफान न हो वह जीवन मृत्यु के समान होता है। मेरा जीवन उबड-खाबड पगडंडी है। लोग मुझे पागल कहते है। कहो, लेकिन जिस दिन मुझे यह महसूस होगा कि मैं वास्तव में पागल हूँ, मेरे मन पर मेरा काबू नही है, उस दिन रमेश इस चट्टान से इस इकतारे के टुकडे टुकडे कर के कही दूर चली जाऊंगी।

प्रसंग बदल रहा था अत मैंने गंभीरता पूर्वक धीमे स्वर मे पूछा, 'फिर तुम्हारा महाराज से झगडा क्यो हो गया?'

'झगड़ा ?' तारो चौंक कर गंभीर हो गई, 'एक दिन महाराज यह हठ कर ही बैठे कि तुम्हें अपने प्रेमी का नाम बताना ही पड़ेगा। मैं बड़े धर्म-संकट में पड़ी। हाथ जोड़े, पाँव पकड़े, प्रार्थना की पर महाराज अपने हठ से जरा भी नहीं डिगे। अन्त में मैंने लम्बी आह छोड़ कर कहा, 'महाराज! मैं आप को तभी नाम बता सकती हूं, जब आप इस बात का वचन दें कि वह मुझे प्राप्त होगा, चाहे वह ध्रुव तारा ही क्यों न हो ? महाराज थोड़ी देर तक चकित से रहे और अंत में बोले, 'ऐसा ही होगा।' मैं विह्वल हो उठी। क्षण भर के लिए मेरा हृदय प्रसन्नता के मारे अठखेलियां करने लगा। प्रसन्नता की अति के कारण मेरा गला अवरुद्ध हो गया। बड़ी कठिनता से मैं बोली, महाराज आप! मेरे प्रेमी आप हैं, महाराज मानसिंह। इतना मैं कैसे और किस तरह बोल गई, मैं नहीं जानती ? बोल कर मैं ज्ञानसून्य सी हो कर उन की ओर निहारने लगी। वे मेरी ओर विचित्र दृष्टि से देख रहे थे और फिर एका-एक जोर का अट्टहास कर के बोले, तेरी यह हिम्मत ? क्रीतदासी, गायिका, गणिका। 'वे तीर की तरह चले गये। बस चले ही गए, फिर न आए। उस रोज से महाराज मुझ से नाराज हो कर मुझ से दूर-दूर रहने लगे। न गीत सुनते थे और न वीणा।' तारो का स्वर कुछ गुस्सीला हो गया, 'राजा था न ? झूठी आन और शान को लेकर मेरे जीवन और यौवन दोनों को नाश की भट्टी में झोंक गया। लेकिन मैं उस से अब भी प्रेम करती हूं, जानती हूं कि उस की आत्मा हर रात यहाँ भटकने आती है। मेरा गीत सुनती है दर्द दीवानी मेरा दर्द न जाने कोय.. वह कुछ रुक कर बोली, 'तभी तो मैं अपने सिर पर बाल नहीं रखती। शृंगार कर के किस को दिखाऊं ? सुन्दर जरूर हूँ, जवान जरूर हूँ, पर यदि उपभोक्ता व कद्रदान ही चला गया, फिर इन को रखने से मतलब क्या ?' वह मुझे विचित्र दृष्टि से देख कर उचक कर बोली,' फिर साबुन कौन लगाए ? साबुन के अभाव में जुएं पड़ जाती है। और ये जुएं मेरी संगीत-साधना में बड़ा विघ्न डाल देती हैं। रात को वह आता है। मैं गाती हूँ और यह बाल ? जरूर कुछ बाधा पहुंचाते हैं, अत मैं इन्हें रखती ही नहीं। रमेश! तुम मेरा गीत सुनोगे ?'

मैंने अ यत सहानुभूति पूर्ण स्वर में कहा, 'जरूर सुनूंगा तारो, तुम्हारा गीत तुम्हारे दर्द में भीग कर जब कंठ स्वर से निकलता है तब मुझे मीरा की याद आ जाती है, पर तुम्हारा यह गीत हम सब का सुख क्यों नहीं बनता ? तारो तुम भावना के पंख पर खूब उड़ती हो। तुम मानसिंह की

गायिका जरूर हो पर तुम्हे यह भ्रम है कि वह यहां हर रोज आता है। तुम सहज नारी बन कर हम सब के बीच आ जाओ। मैं कहता हूँ कि तुम्हारा सगीत हमारे तन का प्राण हो जायगा और तुम्हे लोग पगली नही, गायिका कहेगे, सगीत साम्राज्ञी कहेगे। यह भक्ति का इकतारा एक व्यक्ति का सतोष जरूर बन सकता है पर हम सब का नही, इस लिए मैं तुम से प्रार्थना करूंगा कि तुम भ्रमजाल से निकल कर सत्य के दर्शन करो। भीख के टुकडो पर न पल कर अपने श्रम के टुकडो पर जियो। अन्यथा यह दुनिया अच्छे-अच्छे को पागल बना देती है, समझी।' उसे मेरी बात से सतोष हुआ। प्रकाश उस के चेहरे पर चमका। परिवर्तनमय प्रकाश अनंत आत्मा की ज्योति वह मुस्करा कर बोली, 'एक बात बताओगे, क्या मैं बहुत सुन्दर हूँ ?' तारो ने एकदम नया प्रश्न कर दिया।

मैंने गौर से देखा तारो मे रूप साधारण मात्र है और भी रहा होगा साधारण ही। और यही कारण हो सकता है कि राजा मानसिह ने इसे अपनाया न हो, पर मै कुछ नहीं बोला। उस ने पुन कठोर स्वर में पूछा, 'सच सच बताओ मैं कैसी हूँ ?'

मैं हठात् बोला, 'तुम बहुत जल्दी आवेश मे आ जाती हो क्यो ? मै समझता हू कि बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य चिरन्तन सौन्दर्य को क्यो नहीं देखती जो सुन्दर, बहुत सुन्दर है और जिसे हम सब प्यार करते हैं।, और मैं वहां से तेजी से 'उठता हुआ बोला,'मैं प्रार्थना करूंगा कि तुम अपने आपको हम सबके लिए जिंदा रखोगी। अपने आपको समष्टि के लिए दान कर दोगी। इतने विराट जीवन मे मिलकर व्याप्त हो जाओगी। मैं सच कहता हूँ तुम तुम महान बन जाओगी. वह मुझे देखती रही, मैं चला आया।

कई दिन बाद जब मैं वहा गया तब मैंने चट्टानके समीप इकतारेको टूटा हुआ पाया। मेरी आखें भर आई। मैं भारी मन लिए हुए खडहरसे बाहर निकला कि उस भिखारिनने कहा, बाबूजी तारोने एक दिन हठात् इकतारेको तोडते हुए कहा था 'वास्तवमे मैं भ्रमजालमे भटक रही थी। न महाराज आते हैं और न उनकी आत्मा। अब मैं इस एकातको छोडकर वापस तुम सबके बीच जाकर रहूगी और गाऊंगी। मेरा प्रीतम भले अप्राप्य हो, पर मेरा सन्तान, हां मेरी सन्तान तो मेरे इर्दगिर्द हैं। मैं उन्हे नयी लोरीया सुनाऊंगी।

मेरा मन अद्भुत आशासे भर गया जैसे जीवन जीत गया हो। मैं जीत गया हू।

***

सरसों पियरा गई है, लली—

—शैलेश मटियानी

महेश्वरी माता ने उसे अपनी शरण में ले लिया था। अहा रे, साक्षात् माता पार्वती का जैसा रूप-स्वरूप था उनका। तप के तेज से मुंडा हुआ सिर और चौड़ा ललाट, सवेरे की धूप में चबूतरे पर रखी हुई जल-भरी तांबे की कलसी-जैसा चमचमाता रहता था।

देवकी अभागिनी के सारे सुख-दुख पूछकर, महेश्वरी माता ने उसके सिर का भी मुण्डन कर दिया था और गले में रुद्राक्ष की कण्ठी पहना दी थी। कहा था— चेली, तुम जैसी दुखियारी के लिए इस पापी संसार में कहीं सुख-शांति नहीं है। मैं तुझे भगवान् भूतेश्वर की शरण में लेती हूं। इस पापी चोले के सारे रोग-शोक और पातक-कलकों का विनाश लिंगेश्वर ही किया करते हैं। इस जनम में तू उनकी भक्ति करेगी, तो उस जनम में मोक्ष मिलेगा तुझे। सन्यासिनी बना देती हूँ, सिर मूंड देती हूँ, कान फाड़ देती हूँ, और रुद्राक्ष की कण्ठी पहना देती हूं। बाद में रामचरणनाथ गिरी बाबाजी से दीक्षा, और बैरागी तुतुरी दिलवाकर तेरा जोग सिद्ध, चोला पवित्र करवा दूंगी।...तब तू भी हमारे साथ चौंसठ तीर्थों की यात्रा में निकला करेगी। यह जीवन भी कट जायगा, पर लोक भी सुधर जायगा। जय, लिंगेश्वर ”

मगर देवकी छोरी के कलकी भाग ने महेश्वरी माता की शरण में भी सुख में नहीं रहने दिया। दीक्षा और बैरागी तुतुरी लेने के लिए सोमवारी अमावास्या को जब वह नाथगिरी रामचरण बाबा के मठ में पहुंची, तो उस का सन्यास सिद्ध नहीं हो पाया। अरे, सन्यास-धर्म देवकी-जैसी कलंकिनी अभागिनी से क्या सिद्ध हो पाता? कैसे-कैसे ऋषि मुनियों की आत्मा डोल जाया करती है।

परमेश्वरी माता ने तो मठ में लगाते समय ही समझा दिया था, कि 'बेटी, जोग धरम बड़ा कठिन धरम है। यह तो परमेश्वर और गुरू की कृपा से ही सिद्ध हो सकता है। तूने आज तक न संसार-चक्र के अधरमों को झेला है और न संन्यास-धरम की सिद्धि के लिए तुझ को तप करने का अवसर मिला है। मगर इस समय तो गुरू महंथ की सेवा में जा रही है। गुरू सिद्ध हो गए, तो धरम की सिद्धि मिलेगी। "इतना जान ले, चेली, कि जोग धरम के कई बड़े कठोर नियम होते हैं। दीक्षा देते समय गुरू लोग पहले इस पापी संसार के चक्रों से मुक्ति दिलाते हैं, इस लिए दीक्षा लेते समय जैसी गुरू की आज्ञा हो, वैसा ही आचरण करना चाहिए। अच्छा, जा अब तू। संन्यास-धरम एक बार कष्ट झेल कर भी सिद्ध कर लेगी, तो फिर जनम-जनम के लिए राग-शोक और संसार-चक्र की व्याधियों से मुक्ति पा लेगी।'

मगर, देवकी में फिर भी सन्यास-धरम सिद्ध नहीं हो पाया। रामचरण महंथ ने पहले तो अपनी चरण पूजा करवाई उससे, फिर दीक्षा का शंख हाथ में लेते हुए अपना संसारी चोला उतार कर, निरकार-नागा रूप धारण कर लिया। बाबाजी तो संसार-चक्र से पार लगे हुए ऋषि-मुनि ठहरे, मगर देवकी छोरी का संसार-चक्र तो अभी टूटा ही नहीं था, सो शरम के मारे आँखें खोल कर देखना कठिन हो गया था उस के लिए। महेश्वरी माता के शब्द कानों में गूंज रहे थे, कि सन्यास-धरम सिद्ध करना बड़ा कठिन है। जैसी गुरु की आज्ञा हो, वैसा आचरण करना चाहिए।

और तब देवकी ने एक बार अपनी मानसिक दुर्बलताओं पर विजय पाने की चेष्टा की थी। महंथ गुरु रामचरण बाबाजी पद्मासन लगा कर बैठ गये थे और देवकी को उन्होंने आदेश दिया था, कि—"बेटी, कठिन तप से विमुख हो के सन्यास-धरम सिद्ध नहीं होता है। गुरु की आज्ञा का पालन करो। एक घड़ी की कठिन तपस्या करनी होगी, उस के बाद तुम्हें बैरागी ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। सन्यासी चोला धारण करने से पहले दीक्षा-गुरु के साथ भैरवी-चक्र सिद्ध करना बहुत आवश्यक है। आओ, पापी संसार के कर्महीन संसारियों की तरह लाज-सकोच करना छोड़ो। अपने संसारी-वस्त्र उतार कर, मेरे पद्मासन में बैठकर, सोमेश्वर महाराज की पूजा करो। तुम को धरम का चोला प्राप्त हो जायगा और फिर सारे रंग-शोक और भय-व्याधियों से मुक्ति मिल जायगी।"

और कहीं शरण थी नहीं, ईश्वर की ही शरण में रहना था। और, ईश्वर की शरण प्राप्त करने से पहले गुरू की शरण में जाकर अपना सन्यास-धरम सिद्ध करना आवश्यक था, सो कमरे में जलते पंचमुखा दीपक को बुझाते हुए, देवकी ने अपना ससारी चोला उतार दिया था। हे, राम! लाज-शरम से सारी देह कांप उठी थी उस की, मगर तप किये बिना, संसार-चक्र छोडे बिना, धरम-सिद्धि कठिन था। मगर, इतनी लाज-शरम त्यागन के बाद भी पूरा सन्यास-धरम सिद्ध नहीं कर पाई थी देवकी। ·

बाबाजी तो परमेश्वर के सिद्ध महंथ ठहरे, उनके मन में पाप कैसे पनप सकता है? मगर सन्यास-धरम सिद्ध करने की उनकी पद्धति इतनी कठिन थी, कि देवकी, अपना घाघरा-धोती समेटती, भय से थरथराती उस अंधकार-भरा रात्रि में ही, मठ से बाहर भाग गयी थी। उसके मन में एक पाप आ गया था, कि कहीं बाबा रामचरण महंथ की संन्यास-दीक्षा तो सिद्ध हो गई, मगर उसकी आत्मा से संसार-चक्र की छाया नहीं छूटी, तो कहीं ऐसा न हो, कि ·

हे राम, परमेश्वर के भक्त महंथ के लिए ऐसी पाप की बात सोची थी देवकी ने, उस के दण्ड आज तक भोगती चली आ रही है। ··

\+ \+ \+

चितई के पडाव तक पहुंचने के बाद कहीं रात खुल पाई थी। विपरीत दिशा में दौडते-दौडते देवकी की छाती दुख गयी थी। उजाले में कहाँ जाएगा, किसम शरण मांगेगी, कोई ठौर-ठिकाना नहीं था। परदेश जाते मुसाफिरों में से दो पलटन के कप्तान लोग मिल गये थे। वो भी ससार-भर में घूमे हुए ऊंचे ऑफीसर लोग थे, सो एक झलक देखते ही पहचान गये थे, कि यह कोई दुखियारी छोरी है। बेचारों को दया आ गयी थी और पलटन की कैण्टीन में 'लेडी-सेलसमैन' बनाने का आश्वासन देकर, देवकी के आंसुओं की धार रोकी थी उन्होंने।

मगर देवकी के फूटे हुए भाग में तो आज का दिन लिखा हुआ था, 'लेडी-सेलसमैन' की जैसी ऊंची नौकरी पर कहां से पहुंचती? विकट वन के घने जंगल में गुजरती सडक पर से गुजरते हुए, दोनों कप्तान उसे पिपलतडी के सूने खण्डहर में बुला ले गये थे, कि जरा विश्राम कर लेते हैं। ··

और, विश्राम करते करते, उन दोनो कप्तानो ने देवकी की छाती मे अपनी राइफिल रख दी थी। सद्गुरू रामचरण बाबाजी की सेवा-भक्ति से विमुख हो के भाग आयी थी देवकी, उसी अधर्म का दण्ड उसे यह भोगना पड़ा, कि कसाई के छुरे के नीचे पडी हुई बकरी-जैसी तड़फती विलाप करती रह गयी, मगर पातक मे नही बच सकी। कस्तूरी थी तब तक, अब कोयला बन गयी थी।

दोनो कप्तान, विश्राम करके, चले भी गये थे, मगर देवकी असह्य-व्यथा और लाज से गरम रेती पर पडी मछली-जैसी तडफती, उसी पिपलतडी के खण्डहर में विलाप करती रह गयी।

कुछ संभली थी, तो वही पिपल के पेड मे भूल कर मर जाने का विचार मन मे आया था, मगर दोपहरी भी पूरी बीती नही थी। पिपल का पेड बाहर सडक के किनारे खरा था। राह-चलता कोई मुसाफिर देख लेगा, ऐसे अस्त-व्यस्त वेश मे, तो ?

इसी भय मे देवकी खण्डहर के एक कोने मे दुबक गयी थी, कि रात के अंधकार मे बाहर निकलेगी।

मगर अंधकार फैलने से पहले ही, अपनी छिपाई हुई ठर्रे की बोतले ले जाने के लिए उमेद सिह वहां पहुंच गया था। कस्तूरी थी, तब किसी को उस पर दया नहीं आई, तो अब कोयले के टुकडे की लाज उमेद सिह बेचारा क्या रखता ?

और उसी उमेद सिह ने, थोकदारनी-पधानी बना कर रखने का लालच दे-देकर, साल-भर तक खसमगिरी करने के बाद, ओली-डोली औरत की तरह उसे निकाल दिया है। कहां जिंदगी-भर के लिए आधार देने की बात करता था, कहां काफल के तने मे लधार लगा कर, आज फिर लावारिस-जैसी ही बैठी हुई है।

हे राम, कैसी निठुर-निर्मोही होती है पुरुष की जात ?

कहां तो खुद ही रोज-रोज उन तीनो को लगाया करता था, कि जरा घनानन्द पतरौल को वश मे करके रखोगी, तो साल-दर-साल घास-लकडी काटने की सुविधा रहेगी। दूध-बेचुवा लोगो का गांव था, सो भैंसे अधिक पाल रखी था, मगर घास पूरी नही पड़ती थी। सिताला और बिकट बन के चारो ओर सरकारी दीवारें चिनी हुई थी। पतरौल मुंशी रात-दिन चक्कर काटते रहते थे। जो औरत घास चारती मिल जाती थी, उसी की दरान्ती-डलिया

छीन ले जाते थे। ऊपर से दस-पांच गंदी-गंदी बातें भी सुना जाते थे, कि 'अपने बाप का जैसा जंगल समझ कर तो हरेक औरत आ जाती है, मगर जरा घनानन्द पतरौल का काम-काज भी चला देना चाहिए, ऐसा कोई नहीं सोचता।'

सौतें भी देवकी को आगे पीछे की भद्रा-कुभद्रा-जैसी मिली हुई थी और ठेल-ठेल के उसे जगलात के 'आनन्द-कुटीर' बंगले में पहुंचा आती थीं, कि "हो गया, बे देवकी! अब बहुत नखर-जैसे तू भी मत किया कर। हम लोग तो खरी बात यही जानती हैं, कि औरत को लाज-परहेज वहीं तक रखना चाहिए, जहाँ तक वह एक मरद की हो। जहाँ एक से दो हो गए, तो फिर किसी और से कौन-सी देह गलती है?'

और देवकी उधर घनानन्द पतरौल को आनद देती रहती थी, इधर उसकी दोनो सौतें घास चोरती रहती थीं। सारे चौमासे-भर देवकी को पातर-वृत्ति-जैसी ही करनी पड़ी था। असौज बातने लगा था, तब अंतिम बार अलग बैठी थी देवकी। न-जाने कौन-सा पुण्य फल रहा था, जो माथे पर कलंक का कोई प्रत्यक्ष टीका तब तक नहीं लगा था। कोख रीती ही रह गयी थी।

असौज निकलते मे नहा कर लौटी थी देवकी, तब से सिर्फ एक बार ही जंगल गयी थी। घास-कटाई लगभग समाप्त हो गयी थी।...

इसीलिए तो देवकी ने कल रात एकदम आत्मविश्वास के साथ कहा था, कि "अब जाती हूँ, तो तुम से ही होऊंगी। तुम्हारी ही सूरत नहीं उतरा, तो फिर मुझे निकाल देना।"

मगर, उमेदसिंह तो पिछले दो-तीन महीनों से ही एकदम घिना गया था उसस। सौतों की सांठ-गांठो ने अलग से अपने-अपने करतब दिखाने शुरू कर दिये थे, कि 'आज तक तो हमारे कुल-वंश मे कोई पातक नहीं लगा था, मगर घनानन्द पतरौल की सूरत और देवकी की उसके साथ सटर-पटर तो करीबन-करीबन सारे गांव की औरतो ने देख रखी है।...'

उमेद सिंह तो दूध बेचने, फल्लारा-जुआ खेलने और ठर्रे की बोतल चढ़ाने के बाद आधी रात को घर लौटा था। लौटते ही उस की बड़ी सौत के कमरे मे चला गया था और घण्टे-भर के बाद ही वहीं से सोटा हाथ में लिए निकला था—"कौन स्साली है वह कमीनी—ई ई? जो उमेद सिंह पधान के होते हुए इधर-उधर से जूठा चाटती है! अरे, ससुरी, उमेद सिंह

पधान फलसिमाव से जिस औरत की तबीयत नहीं भर सकती उस को तो बरेली का भूसा पठान भी नहीं संभाल सकता।…"

और देवकी के अनुरोध के उत्तर में, उमेदसिंह ने शराब का एक बहुत बडा भभका मुंह मे निकाला था—"तुम्हारी ही सूरत पर उतरेगा कहती है, ससुरी। जैसे इसने अपनी दा पतरुवा टांगो के बीच मे बिजेसिंह फोटोग्राफर का फोटो-कैमरा फिट कर रखा हो।"

कफू… कफू… कफू…

काफल के वृक्ष पर कही से उडता-उडता कफू पक्षी आकर बैठ गया था। हे. राम यह बावला पक्षी इस लगते फागुन में ही ऋतुरैन की ऋचाएं क्यो बांचने लगा है?

कफ्फू-ऊ…कफ्फू ऊ

कफ्फू-ऊ

आनेवाले चैत की मोहिल स्मृतियो और अपने वर्तमान की अंधकार-भरी घाटियो मे देवकी की दुखियारी आत्मा भटक गयी। उसे लगा, कि कफू पंछी ऋतुरैन की ऋचाएं सुनाने लगा है उसे, कि

खेतो सरसो की पिंडली पांत फूल गयी है

बहनो का लाडला चैत महीना आने वाला है अब…

ओ, मेरी अभागिनी बैणा…

सब बहनो के भाई उन्हें भेटने जाएंगे, तो उनकी आंखो मे मायके का सुख भर जायेगा तेरी दुखियारी आंखो मे कौन भरेगा सुख?

बैणा, मेरी बैणा

तेरे लिए तो भाई भेटने का सुख सपने का सुख बन गया है, अभागिनी।… मगर, चैत तो आयेगा ही और खेतो में सरसो की पिंडली पांत तो फूलेगी ही…

कफ्फू-ऊ—कफ्फू-ऊ…

कफुवा भाई रे, दुखियारी के दुख को और क्यो बढाता है, रे निर्मोही? तू भी तो मेरे मायके की दिशा से उडता आया है, तू नही ला सकता था, रे भिटौली? मगर चैत तो अभी आया ही नही है…

खेतो मे सरसो अभी पूरी पियराई ही नही है

तो, कफुवा भाई रे, इस लगते फागुन मे ही अपनी देवकी बैणा के कलेजे मे कुरकाती-जैसा क्यो लगाने लगा है, रे? जा, भाई, अपनी ठौर को लौट जा।… और जब चैत आएगा, तो चनौली के काफल-वृक्षो से काफल बीनते मेरे दिलीप

देने वाला है हा कौन, रे ? नाम लेने को एक खसम जैसा सालभर तक देखा था, उसने मोटिया-मोटिया के घर मे बाहर निकाल दिया है। शराब का नशा टूटने दाज्यू को ऋतुरैन के आखर सुना देना, कि "सुन, भाई कफुवा रे, मेरी कथा सुन कथा हुंडुर देता जा, रे!"

कफ्फू-ऊ—कफ्फू-ऊ"

सुन, पछी भाई रे। ऋतुरैन की कथा तू यों गाना कि एक रुपुली घुघुती थी। निम्सतानी थी माता पार्वती ने उसे उसकी वृद्धावस्था मे दो संतानो का मुख दिया एक सोनपख घुघुत जनमा उसके घोसले मे, एक सोनपंखी घुघुती जनमी सुनता है, मेरे भाई रे ?

कफ्फू-ऊ—कफ्फू-ऊ

पुरुष जात का वह सोनपंख बडा निठुर निकला। सात समुन्दर पार चला गया नहीं, नहीं रे। वह सोनपखी घुघुती बडा अभागिनी निकली उसने पहले अपनी महतारी का टोका, फिर पिरथुली आमा को भी टोक दिया और फिर एक दिन अपना पूरत-मूरत के साक्षी दिलीप दाज्यू का भी छोड आई दुख-संताप के सात समुन्दरो मे डूबती चली गयी मै पापिनी कस्तूरी का बीटा बनलाती थी, पिरथुली आमा कोयले से भी काला बनकर निराधार बैठी हुई हूँ यहां

कफ्फू-ऊ—कफ्फू ऊ ऊ"

मैं तो आत्महत्या कर लेती, कफुवा भाई रे। अपनी कलकिनी काया को चील-कौवा के लिए छोड जाती।"मगर, इस पापी ससार में तो मरने मे भी पातक लगता है न ? कहीं मेरी लाश पर भी दुनिया वालो की दीठ पड गई, तो भगवान के दरबार मे भी कौन सा सुख लेकर पहुंचूंगी ? मेरी कलंकिनी काया चीरा गयी, तो कोख का अजन्मा-छौना भी हे, राम। मेरी अशकुनिया-जीभ को भूख प्यास की बेला भोजन-पानी का सुख न मिले।"

कफ्फू-कफ्फू-ऊ

कफुवा भाई रे, तू जनमा होगा, तो न जाने तेरी महतारी ने कहां से दाने बानकर, तेरा पेट भरा होगा, न जाने कहां-कहां से तिनके बीन कर, तेरे लिए पालना बनाया होगा और न-जाने कितनी मीठ-माठी तो कथाएं सुनाई होगी तुझे मेरी पिरथुली आमा की तरह ? रुपुली घुघुती की तरह ?

कफ्फू ऊ-ऊ

और मुझ पापिनी को देख भाई रे, अजनमे-छौने की फूल-जैसी काया अपनी कोयले-जैसी काया के साथ मिटा देना चाह रही हूँ। मगर, मेरे कफुवा भाई रे। मै अभागिनी करूं भी, तो क्या करूं ? दुनिया मे मेरा ठौर-शरण

पर कुछ दया उपजी होगी, रे, उस निठुर-निर्मोही के मन मे ?· मगर, उपजी भी होगी, तो अब लौट के क्या करूंगी वहां ? आज नहीं तो कल, कल नहो तो परसो, दो सौतो की छाती पर बैठक मै अभागिनी क्या अपने दिन काट सकूंगी ? · यो कहने को तो घनानन्द पतरौल कह रहा था एक दिन, कि 'उमेदसिंग निकाल देगा, तो मै अपने घरबार रख लूंगा ।, हां, रे भाई पुरुष की जात ऐसी ही बेशरम होती है । · मगर, हे राम, मै भी कितनी निर्लज्ज हो गई हूँ, भाई क सामने अएट-शएट बक रही हूँ ।

कफ्फू-कफ्फू-कफ्फू चिल्लाता कफू पंछी काफल-वृक्ष से दूर उड गया और देवकी सोचते-सोचते ही शरमा गई, कि·· छि, ऐसे दुख की बेला मे कैसी ओछी बाते सोचती हूँ, कि बन क पंछी भी शरमा जाते हैं ।

अरे, जिसने थोकदारनी-पधानी का रुतबा देने का आश्वासन देकर साल भर तक सात भांवर फिरे खसम की तरह अपने घरबार रखा, जब उसी उमेदसिंह ने सोटिया-सोटिया के ऐसी दोहरी-देह को दुतकार दिया तो वह चार दिना का चोर जैसा घनानन्द पतरौल क्या आश्रय दे सकेगा ? रख भी लेगा, तो फिर एक दिन वही आयगा, कि देवकी की कोख से उमेदसिंह की सूरत-मूरत बाहर निकलेगी और तब घनानन्द भी उसे वैसी ही लतिया-लतिया के निकाल देगा, जैसे उतम सिंह ने उसकी महतारी रेवती को निकाल दिया था । ·

और तब देवकी को कहां मिलेगी पिरथुली आमा जैसी ताई निपूना और बावली बुढिया, जिसे अपनी कोख की सोनपंख-जैसी संतति सौंपकर, देवकी अपनी कलंकिनी काया से मुक्ति पाने को चल देगी ?

तो और कहां जाए देवकी अभागिनी ?

महेश्वरी माता क मठ मे ? · मगर, रामचरण बाबा उसे चिमटो से मारकर भगा देगे, कि तब सन्यास-धरम खण्डित करके चली गई थी सुसरी, और अब संसार-चक्र के पातक बटोर कर लौटी है ? ·

तो · दिलीप दाज्यू की शरण मे चली जाए ?

पिरथुली आमा तो कहा ही करती थी, कि भाई बहन के लिए पीठ पीछे का आधार होता है

और ऐसा सोचते-सोचते ही देवकी को लगा कि वह काफल के तन मे नहीं, अपने दिलीप दाज्यू मे पीठ टिकाए बैठी हुई है ··

बैणा, मेरी बैणा
फुली रैछो दैणा··· ·
बहना, ओ मेरी बहना ! ·
सरसो पियरा गई है लली !

***

तीस

किस्सा राजा विकरमाजीत का

—भँवर लाल जोशी

नाम जीवनजीत, पर, जीवन में हमेशा हारते रहने वाले कृशकाय उस किरानी को प्राय मुहल्ले के सभी लोग जानते हैं। जानने का कारण भी है। वह सदा भाग्योदय की कल्पना में खोया रहता है। लोगों को विश्वास है कि इस आदमी के सपने कभी पूरे नहीं होंगे। वह हमेशा सोचता रहता है। वह क्या सोचता है, यह बतलाने की जरूरत मैं नहीं समझता और यह उचित भी नहीं कि किसी आदमी का कच्चा चिट्ठा खोला जाय। जीवन जीत जैसे लोगों के जीवन में कई किस्से होते हैं सिंहासन बत्तीसी जैसे। यह किस्सा इस विक्रमाजीत के तैंतीसवें वर्ष का है।

रात के दो बजे हैं। बिस्तर पर जीवन जीत लेटा हुआ है। मिट्टी तेल का लैंप यूं टिमटिमा रहा है जैसे बूढ़ा बैल हल में जुता लड़खड़ा रहा हो या हारा जुआरी घर लौट रहा हो। पर बात जीवन जीत की है। वह अब भी जाग रहा है। किस्सा पद्मावती पढ़ रहा है। अलाउद्दीन दर्पण में उसका प्रतिबिम्ब देख बेहोश हो गया। जीवन जीत के शरीर में हरकत हुई। उसने महसूस किया कि उसका बैताल आ गया है और कह रहा है — राजन! आप यहां सुख की नींद सो रहे हैं, बाहर एक पद्मिनी आज अल्लाउद्दीन से अपने आत्म सम्मान की याचना कर रही है।

जीवनजीत उठ गया। बाहर उसका पालतू बैताल कुत्ता भूंक रहा था। इस मरियल कुत्ते की भी एक कहानी है। यह एक देशी कुतिया का बच्चा अर्द्ध-विलायती कुत्ता है। इसका बाप एक साहब का अंग्रेजी कुत्ता था जो एक दिन नौकर के साथ टहलने आया था, बलात्कार कर अपने वतन को चला गया। मां इसे जन्म दे भूख से तड़प कर स्वर्ग सिधार गई। अच्छा खाना न मिलने से यह भी मरियल हो रहा है। इसे जीवन जीत अपनी बत्तीसवीं कहानी के सिलसिले में उठा लाया था।

हाँ, तो किस्सा राजा बिकरमाजीत की तैंतीसवीं पुतली का है जो दरवाजे के बाहर खड़ी है और जीवन जीत का अगिया बैताल भूक रहा है।

दरवाजा खोल कर जीवन जीत बाहर आया। बाहर एक औरत खड़ी है। देखने-सुनने में बुरी नहीं है। जीवन जीत उसे देख बेमतलब मुस्कुरा उठता है मानो वह उसका रिस्तेदार हो। "किसे ढूंढ़ रही हैं आप?"

"मैं एक दुखिनी हूँ। स्टेशन जाना चहती थी। रास्ता भूल गई हूं।"—उस स्त्री ने बड़े सलज भाव से कहा।

जीवन जीत के मन ने कहा, सुनाम पैदा करने का यही मौका है, मत चूको। 'चलिए, मैं आपको स्टेशन पहुचाये देता हूं।"

और घर पर ताला लगा, पहरे पर अगिया बेताल को मुस्तैद कर जीवन जीत बिना विचारे उस स्त्री के साथ चल पड़ा।

मेन रोड पर आ जीवन जीत ने सडक पर उडती नजर डाली और फिर साथ की उस तथाकथित दुखिना पर दृष्टिपात करता हुआ बोला—"स्टेशन काफी दूर है। यदि आप कहे तो रिक्शा कर लें!"

"जैसी आपकी मर्जी!"—उस दुखिया ने धीमे स्वर मे कहा।

जीवन जीत की नजरो ने पान की गुमटी के पीछे खडे रिक्शे को ढूंढ़ निकाला। रिक्शावाला सो रहा था। काफी समझान-बुझान पर राजी हुआ।

दोनो रिक्शे पर बैठ गये। नारी का स्पर्श पा जीवन जीत तनिक रोमाचित हुआ। पर मौन रहा। उस का यह कार्य यदि अखबारो मे छपे तो उसकी कीर्ति मे चार चांद लग जायेगे। जब सारा संसार सो रहा है तो वह किसी की सेवा मे व्यस्त है। पर किसे गरज पड़ी जो इस महान सेवक को प्रकाश मे लायें। वह तो पर्दे के पीछे का कलाकार है। खतरा कोई उठाये नाम किसी का हो। यही जग की रीत है। जीवन जीत विचारो मे खो गया। पद्मावती को सती होना पड़ा। पर अलाउद्दीन? उसे तो गुजरात की रानी मिल गई। औरत के दो रूप। नहीं शायद हजार रूप!!

हठात् चलते रिक्शे के पहिये के चूं-चूं शब्द के मध्य उस संगिनी ने कुछ कहा। विचार-धारा मे व्यवधान पड़ गया।

"आप ने कुछ कहा ?"

"आप एक शरीफ आदमी हैं।"

कैसा बेतूका सवाल। पर जीवन जीत की जबान से निकला—"जी .."

"जो भी आप की जेब में हो सीधी तरह से मेरे हवाले कीजिए वर्ना मैं शोर मचा दूंगी कि आप मुझे भगाये लिए जा रहे हैं।"

"अयँ।" जीवन जीत बुरी तरह चौंका, लेकिन तुरन्त संभल गया और अचरज भरी निगाह से उस पद्मीनी की ओर देखा जिसे वह स्टेशन पहुँचाने जा रहा है, तदुपरान्त सशंकित दृष्टि से रिक्शेवाले की ओर देखा कि कहीं वह इस परिवर्तन से अवगत तो नहीं हो गया। पर वह अपने मे मस्त रिक्शा खींचे जा रहा था।

"क्या कहती हैं आप ? म म • मैं तो ••" जीवन जीत हकलाने लगा।

"मैं कुछ नहो जानती। तुम सीधी तरह से पैसे निकालते हो या मैं शोर मचाऊ ?" उस बेनाम स्त्री ने थोडे कडे स्वर मे धमकी दी।

गऊ का दूजा अवतार जीवन जीत पसीने–पसीने हो गया। होम करते हाथ जला। उसकी अक्षय कीर्ति को कंलक लगने की आशंका उत्पन्न हो गई कल लोग उसके विषय मे क्या-क्या कहेंगे ? वह सोच न सका।

उसकी जेब मे कुल सात रुपये नौ आने थे। एक किरानी के पास महीने के आखिरी दिनो मे इस से अधिक होता भी नहीं है। उन्हे उस पद्मीनी के हवाले कर वह रिक्शे से उतर पड़ा। रिक्शा चला गया।

कुछ देर वह जाते हुए रिक्शे को देखता रहा फिर एक ठण्डी सांस ले पैदल घर लौट पड़ा।

घर पर उसका अगिया बेताल भूंक रहा था।

***

मासूम गुनाहों की भोली शर्त । —विश्वनाथ

सम्पादकजी,

आवश्यकता से नहीं, शौक मे गया था कबाड़ी की दुकान पर । एक फटी-पुरानी डायरी मिल गई रद्दी की ढेर में । उलटी-पलटी आकर्षक लगी घर ले आया । उसी के कुछ अंश आप को भेज रहा हू । अपनी ओर से तो मैंने मात्र अपना जोड़ा है ।

२० सितम्बर .

राजेश ! बहुत याद आती तुम्हारी ।

सोचती हू , देहरादून में बिताया पिछला साल कुछ लम्बा हो जाता ।

क्या ही अच्छा होता अगर मैं तुम्हारी किताबो को न खोला करती ।

१६ अक्टूबर काश ! बीता हुआ कल एक सपना होता ।

आज फिर राजेश का पत्र आया है । लिखा, 'रोजी । मैं, तुम और यह सारी दुनिया जिन्दगी की एक भोली शर्त पर जो रहे हैं । और यह भोली शर्त है, अपनी भूल को प्यार करने की ! विधाता ने भी तो भूल की कि चाद के मुंह पर काला दाग लगा दिया । पर वह दाग भी हमें प्यारा लगता है । बताओ रोजी । ऐसा क्यो होता है ? मैं जानता हू, तुम इसका जवाब नही दोगी । तुम दे भी नहीं सकती । क्योकि चेतना की एक पतली पर्त ने हमारी मासूम आत्मा पर पहरा डाल रखा है ।'

पर राजेश, तुम यह क्यो भूल जाते हो कि मैं एक औरत हूँ । औरत का भी एक छोटा-सा दिल होता है । उस दिल के घोसले मे उसके अरमानो और उमगो के पछी पला करते हैं । और तुमने उस दिलका मसल दिला । उस घोसले को तोड डाला । तुमने एक भोले विश्वास को छलने की कोशिश की ।

१५ अक्टूबर ..

प्रमिला मिली थी आज पार्क मे । विनोद भी उसके साथ था ।

जाने घर में क्या अजीब सी घुटन छाई रहती है । लगता है, यह घर किसी दिन मुझे खा जाएगा । शाम को पार्क चली गई थी, अकेली ही । टावर की बाईं तरफ का क्ट्ट्रैंगल खाली सा था । उधर ही मैं चल पडी । मैंने देखा, एक तरफ ज़रा हट कर प्रमिला और विनोद बैठ हैं । मेरी तरफ उनकी पीठ थी । जी में आया कि पीछे से जाकर प्रमिला की आखे मीचलूं । मैंने अभी दो कदम ही बढाये थे कि वह बड़े ज़ोर से हंस पडी । विनोद ने उसकी पीठ पर पडी दो चोटियो मे से एक को खीचा, और वह वही घास पर लुढक गई । लेटे ही लेटे उसने अपनी चोटी छुडाने के लिए विनोद का हाथ पकडा और विनोद उस पर झुक गया । मेरी सांस जोरो से चलने लगी । और एक अजीब सी हालत मे मैं फुर्ती से लौट पडी ।

...राजेश ! याद है, कभी मैं और तुम इसी तरह मदहोश शामो में बेहोश जिन्दगी को प्यार किया करते थे ? बहुत कोशिश करती हूँ कि भूल जाऊं कम्पनी बाग की वह शाम ! वह हवा, जो मेरे बालो को उडाये जा रही थी, और वे उंगलिया जो उन्हे सम्हालने और सुलझाने की जगह उनमे उलझती जा रहा थीं ।
..याद है, तुमने कहा था, 'रोजी ! क्या यह मुमकिन नहीं कि इन भीगी शामो मे ही हम अपनी जिन्दगी गुजार दें ?, तुम्हारे ऐसा कहने पर जब मैंने तुम्हारी तरफ देखा तो तुम बोल पडे थे, 'ऐसे क्या देखती हो ? तुम्हारी कसम रोजी ! यह आखें' और तुमने मुझे अपनी तरफ खीच लिया था। हाय

राजेश

१० अक्टूबर

पिताजी बता रहे थे कि राजेश की चिट्ठी आई है। वह मुझसे शादी करना चाहता है। उन्होने लिख दिया है कि वे उसी हालत में मेरी शादी उससे कर सकते हैं, जबकि वह इस बात का सबूत दे दे कि वह कुंआरा है, अथवा विधुर।

मैं जानती हूँ राजेश यह प्रमाण कभी नही दे सकता। मुझे पता है कि वह शादीशुदा ही नही बल्कि एक बच्चे का बाप भी है। मेरे पास मंजुला का वह पत्र अब भी है, जो उसने राजेश को लिखा था। कितनी बार कोशिश की कि उसे फाड कर फेंक दू । पर ऐसा नही हो सका...नही हो सका।

मैं भी एक औरत हूं, और मजुला भी। राजेश एक नही, दो-दो औरतो को धोखा दे रहा है। काश, वह जान पाता कि औरत मिट्टी का खिलौना नही। मुझे याद है वह दिन, जब मजुला फूल से बेटे और अपनी मा को लेकर मेरे दरवाजे पर आई थी, नारीत्व की कीमत पूछने। वह रो रही थी और मुझे लग रहा था मेरी रगीन शामे रो रही हैं। उसकी हिचकियो मे मेरे कुंआरे अरमानो का दम घुट रहा था। और उसने अपना फूल सा बच्चा मेरे पैरो मे रख दिया। एक औरत दूसरी औरत से अपने सुहाग की भीख मांग रही थी। मुझे लगा, मेरे कदमो मे उसकी छाती का दूध नही, मेरे मासूम सपनो की लाश पडी थी। मैंने उसकी तरफ देखा—उसकी आंखो से मेरे यौवन की रंगीन शामो का भीगापन बरस रहा था। मैंने उसके फूल से बेटे को उठा कर चूम लिया। मजुला के आसू पोछते हुए मैंने अपने नादान प्यार की लाश को विस्मृति की चादर ओढा दी। उसी रात, बिना राजेश को बताये, मैं यहा आ गई। यह निर्णय करके कि अब राजेश का मुंह नहीं देखूंगी।

राजेश ! मुझे अपने किये का कोई पछतावा नहीं। मैने वही किया जो हर स्वाभिमानी औरत को करना चाहिये। मुझे मर्द जाति से नफरत होती जा रही है।

यह सच है कि तुम मुझे बहुत याद आते हो, पर यह भी सच है कि मैं तुम से नफरत करती हूँ।।

२५ अक्टूबर

राजेश की चिट्ठी फिर आई है। उसने मुझसे माफी मागी है। देहरादून में बिताई शामो की कसम दिलाई है। और लिखा है, 'मै तुम्हारे बिना नही जी सकता।'

सुनती हूँ, प्रायश्चित में बडी ताकत होती है। राजेश भी पश्चाताप की गंगा में डुबकी लगा रहा है। उसने स्वीकार कर लिया है कि वह झूठ बोला था वह कुंआरा नहा, किसी की मांग का सिन्दूर था। उन दिनो जब वह मुझे गोद मे लिटाकर प्यार की कसमे खाता था, तो उसकी पत्नी आंसुओ के हार पिरोया करती थी। पर अब वह नहीं रही...राजेश को मेरे सहारे की जरूरत है।

बेचारी मंजुला क्या सचमुच मर गई ? और वह फूल-सा बच्चा। हाय, कितना प्यारा था। राजेश। मुझे तुम से हमदर्दी है, पर मैं तुम्हारी नही हो सकती। तुमने मुझे धोखा दिया औरत जाति को धोखा दिया। झूठे कहीं के...

१८ अक्टूबर

रात एक सपना देखा था। मंजुला आई थी मेरे दरवाजे पर। फूल सा नन्हा उसकी गोदमे था। उसने नन्हा मेरे पैरो मे रख दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कभी देहरादून मे रखा था। रोते-रोते उसने कहा, ''रोजा बहिन। एक बार पहले भी तुम्हारे पास आई थी—अपने सुहाग की भीख मागने। आज फिर दरवाजे पर आई हू। मैं जा रही हू—हमेशा-हमेशा के लिये। दूर बहुत दूर—जहा से कोई कभी नहीं लौटा। मुझे विश्वास है मेरे बच्चे को अनाथ नहीं होने दोगी। वे तुम्हारे बिना नहीं रह सकते। रोजी बहिन। पहले भी प्रार्थना मान ली थी, अब आखिरी बार इन्कार मत करना। मुझे विश्वास है, मेरे बच्चे और मेरे पति को तुम अपना बच्चा और अपना पति बना लोगी। और मेरी आख खुल गई।

लगता है, मै बहुत कमज़ोर हो गई हू। मेरे दृढ इरादो की चट्टान बरफ की तरह पिघलती जा रहा है। जाने मुझे क्या होना जा रहा है ?

औरत—एक प्रेमिका।

औरत—एक पत्नी।

औरत—एक मा।

मंजुला का फूल सा बच्चा...

नहीं-नहीं-एक मां का बेटा !

मंजुला का सुहाग ..नहीं-नहीं एक औरत का सुहाग ! राजेश, मैं तुम से नफरत करती हूं। घोर आश्चर्य ! मैं तुमसे प्यार करती हूं !!

२६ अक्टूबर ..

पिताजी कह रहे थे, दो दिन पहले राजेश का पत्र आया था। उसने लिखा है, उसकी पत्नी का देहान्त हो गया है। उसे अब मेरे सहारे की जरूरत है। उन्होंने मेरी राय पूछी है।

कल कह दूंगी, मैं राजेश से शादी करने को तैयार हूं।

३० अक्टूबर ..

क्या ऐसा भी होता है ?

नहीं यह नहीं हो सकता। कभी नहीं हो सकता। मेरा राजेश हत्यारा... असंभव है। यह कभी नहीं हो सकता। ये अखबार झूठे हैं। ये पुलिस मक्कार है। बेचारे भोले राजेश को मंजुला का हत्यारा बता रहे हैं। आखिर कहां से पता चला इन अखबार वालों को ? क्या मंजुला की रूह उन्हें बताने गई थी ?... यह नहीं हो सकता .यह झूठ है। राजेश ! सच बताओ, यह सब क्या है ? बताओ, मैं क्या करूं ?

२ दिसम्बर ..

राजेश को फांसी की सजा हो गई है।

सुना है, राजपूताने की औरतें अपने पति की लाश के साथ सती हो जाया करती थीं।

राजेश ! तुम्हें अकेला नहीं जाने दूंगी। मैंने अपने हीरे की अंगूठी तिजोरी में निकाल ली है। कल सवेरे जब तुम्हें फांसी के तख्ते पर लटकाया जायेगा—मैं स्वर्ग के दरवाजे पर तुम्हारा इन्तजार करूंगी।

पिताजी ! मुझे माफ करना। ●●●

★

नव गीत

आरसी प्रसाद सिंह, डॉ० रामदरश मिश्र, बाल स्वरूप राही, ब्रजकिशोर नारायण, रामगोपाल 'परदेसी', डॉ० रवीन्द्र भ्रमर, जुगमन्दिर तायल, डॉ० श्याम नन्दन किशोर, अजित पुष्कल, डॉ० राम कुमार वर्मा, केदार नाथ मिश्र प्रभात, हरीश भादानी, राम नारायण सिंह 'मधुर', महेन्द्र नारायण 'मस्ताना', नीरज, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शलभ, अमरेन्द्र कुमार पुनीत, वीरेन्द्र मिश्र, विष्णु त्रिपाठी राकेश, पी० आदेश्वर राव, रामरिख मनहर, शैवाल सत्यार्थी, रामचन्द्र चन्द्रभूषण, पुरुषोत्तम खरे, लक्ष्मी नारायण मुकुर।

★

नयी कविता

डॉ० जगदीश गुप्त, वीरेन्द्र कुमार जैन, सिद्धनाथ कुमार, दिनकर सोनवलकर, रामनारायण उपाध्याय, सिद्धेश, सुरेश दुबे 'सरस', नृपेन्द्र नाथ गुप्त, गिरिजा कुमार माथुर, शिवनारायण उपाध्याय, विजयचंद जैन, रामसेवक श्रीवास्तव, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, राजा दुबे, नर्मदा प्रसाद त्रिपाठी, भागीरथ भार्गव, आनन्द भैरव शाही, दीनानाथ 'शरण', चन्द्रमौलि उपाध्याय, अमृता भारती, आनंद शंकर माधवन, ध्रुवनाथ मिश्र, रामनिरंजन परिमलेन्दु, डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त, अनुरंजन प्रसाद सिंह, रामावतार चेतन, नागानन्द मुक्तिकंठ, मनोरंजन अंगार, राजेन्द्र सजल, केदार नाथ सिंह, रामनरेश पाठक, महेन्द्र कार्तिकेय, कमल नाथ मिश्र।

★

नव कथा

ओम् तिवारी अरुण, शरद जोशी, राजेन्द्र अवस्थी तृषित, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', शैलेश मटियानी, भँवरलाल जोशी, विश्वनाथ।

★

एकांकी

प्रफुल्ल चन्द्र ओझा मुक्त, शंभू दयाल सक्सेना।

मात्र आवरण -- आर्ट प्रेस, मुजफ्फरपुर।